श्रीमद् भगवद्गीता

ŚRĪMAD BHAGAVAD GĪTĀ

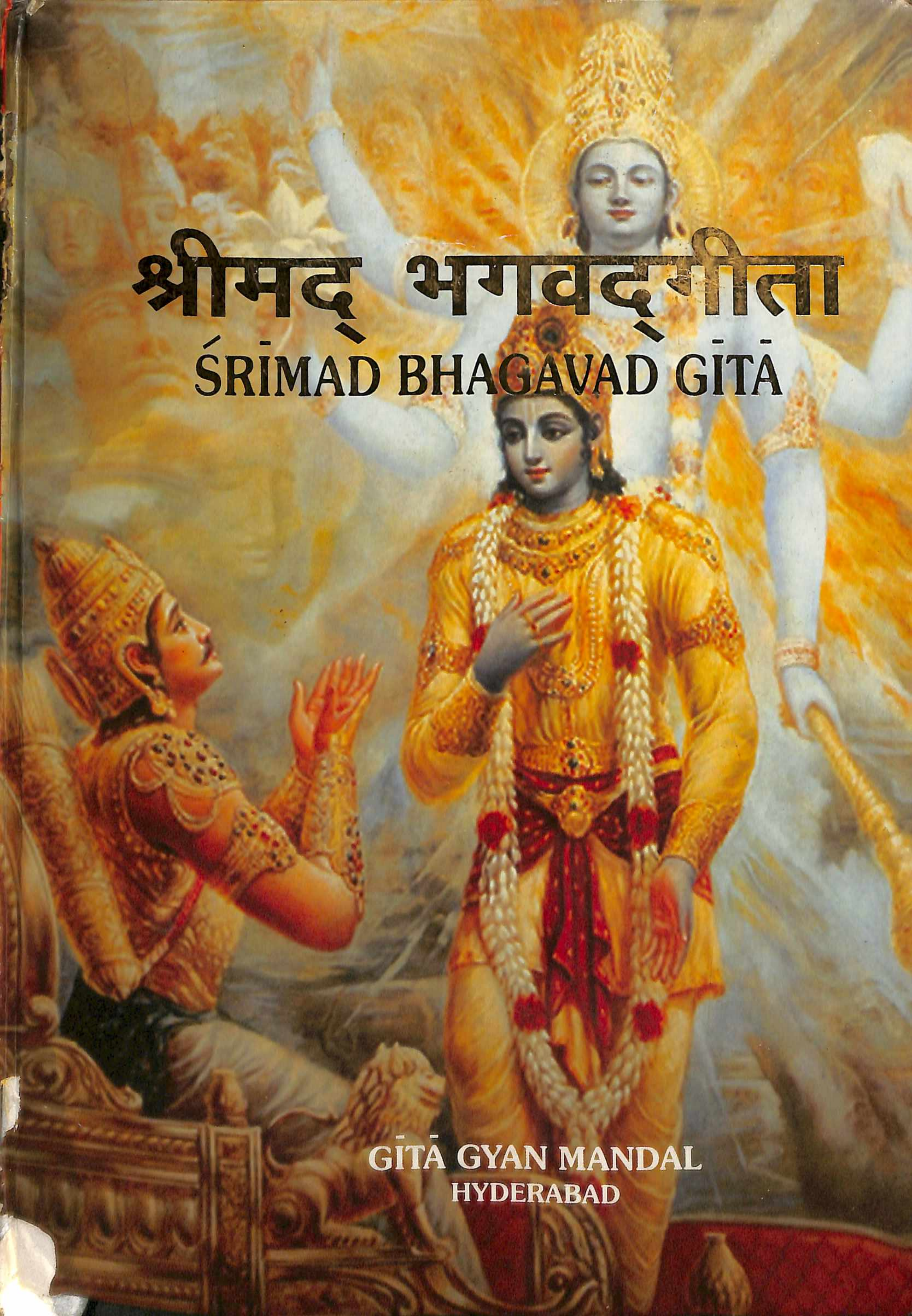

GĪTĀ GYAN MANDAL
HYDERABAD

॥ श्रीकृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥

।। श्रीकृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ।।

॥ श्रीकृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥

श्रीमद् भगवद्गीता
ŚRĪMAD BHAGAVAD GĪTĀ

GĪTĀ GYAN MANDAL
HYDERABAD

॥ श्रीकृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥

प्रकाशन द्वारा :
गीता ज्ञान मण्डल, हैदराबाद
(पंजीकृत संख्या 600, वर्ष 1971)

Published by:
Gitā Gyan Mandal, Hyderabad
(Regd. No. 600 - Year 1971)

श्रीमद् भगवद्गीता उपनिषद्
(मूल संस्कृत तथा हिन्दी-इंग्लिश अनुवाद
सजिल्द - 12 रंगीन चित्रों सहित)

ŚRĪMAD BHAGAVAD GĪTĀ UPANISHAD
(with original Sankrit text & Hindi - English
Translation Hard Bound with 12 Multicolour Photos)

अष्टम संस्करण - 1000 प्रतियां
श्री कृष्ण जन्माष्टमी - 29-08-2013

Eight Edition : 1000 Copies
Sri Krishna Janmastami - 29-08-2013

गीता धर्म अमृत प्रसादी निःशुल्क वितरण

Gita Prasadi: For Free Distribution

सम्पादन द्वारा
ठाकुर भगवान सिंह

Edited by
Thakur Bhagwan Singh

श्री कृष्ण सम्वत् - 5240

भक्तिमान् मे पियो नर: (12-19)

GĪTĀ GYAN MANDAL
HYDERABAD

॥ श्री राधाकृष्णाय नमः ॥

॥ श्री राधाकृष्णाय नमः ॥

॥ ॐ श्रीकृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥

श्रीकृष्ण सम्वत् 5240 श्रीकृष्ण जन्माष्टमी -

श्रीमद् भगवद्गीता धर्म्यामृत महाप्रसादी

Nirmala Gupta.

-: भेंट कर्ता :-

श्रीमती निर्मला गुप्ता - श्री राम भरोसे गुप्ता
श्रीमती शोभा गुप्ता - श्री पंकज गुप्ता
कु. हेमांगी गुप्ता - त्रिशांक गुप्ता

Tibarumal Jewels

‖ Om Tat Sat ‖

Thakur Bhagwan Singh

(Secretary)

GITA GYAN MANDAL, HYDERABAD

।। श्री राधाकृष्णाय नमः ।।

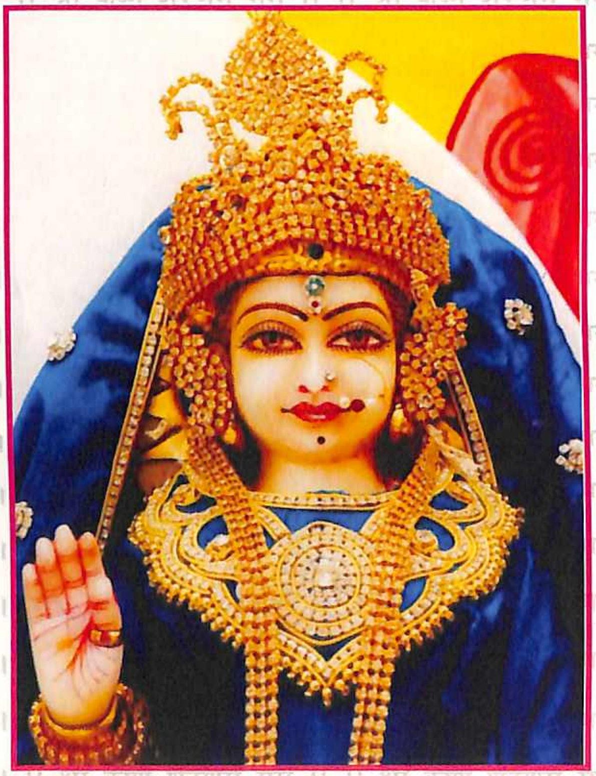

॥ ॐ श्रीकृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥

श्रीकृष्ण सम्वत् 5240 श्रीकृष्ण जन्माष्टमी -

श्रीमद् भगवद्गीता धर्म्यामृत महाप्रसादी

Nirmala Gupta.

-: भेंट कर्ता :-

श्रीमती निर्मला गुप्ता - श्री राम भरोसे गुप्ता
श्रीमती शोभा गुप्ता - श्री पंकज गुप्ता
कु. हेमांगी गुप्ता - त्रिशांक गुप्ता

Tibarumal Jewels

॥ Om Tat Sat ॥

Thakur Bhagwan Singh

(Secretary)

GITA GYAN MANDAL, HYDERABAD

॥ श्रीकृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥

अथ सप्तश्लोकी श्रीमद् भगवद्गीता

ओमित्येकाक्षरंब्रह्मव्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥1॥ (8-13)

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या ।
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च। ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति ।
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्ध सङ्घः ॥2॥ (11-36)

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥3॥ (13-13)

कविं पुराणमनुशासितार ।
मणोरणीयां समनुस्मरेद्यः ॥
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूप ।
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥4॥ (8-9)

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥5॥ (15-1)

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो ।
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो ।
वेदान्त कृद्वेदविदेव चाहम् ॥6॥ (15-15)

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्तवैवमात्मानं मत्परायणः ॥7॥ (9-34)

ॐ तत्सदिति श्रीमद् भगवद्गीता सूपनिषत्सु
ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे
शरणागतियोगोनाम सप्तश्लोकी गीता
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

॥ ॐ श्री गणेशाय नमः ॥
॥ श्रीकृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥

श्रीमद् भगवद्गीता

मूल संस्कृत तथा हिन्दी-इंग्लिश अनुवाद सहित
(सजिल्द - 12 बहुरंगीय चित्र)

ŚRĪMAD BHAGAVAD GĪTĀ

(with original Sankrit text & Hindi - English Translation,
Hard Bound - 12 Multicoloured Photos)

संपादन - द्वारा
ठाकुर भगवान सिंह, बी.ए.

Edited by:
Thakur Bhagwan Singh, B.A.

GĪTĀ GYAN MANDAL
Flat No.304 (D) II Floor, Siddartha Apartments,
Opp. MRO Office, Lower Tankbund Road, Hyderabad - 500 080

ॐ तत् सत्

।। श्रीकृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ।।

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी

दो शब्द

श्री कृष्ण जन्माष्टमी (वर्ष 2013) के शुभ पर्व पर **योग योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण** की दिव्य - वाणी, शब्द ब्रह्म की वाङ्गमयी मूर्ति ईश्वरीय **श्रीमद् भगवद्गीता** का अष्टम संस्करण - भक्ति पुष्प उपासना पुष्पान्जली श्रीकृष्ण चरणों मे समर्पित **धर्म्यामृत महा प्रसादी** । धर्म प्रेमी, श्रद्धालू पाठकों में **स्वाध्याय ज्ञानयज्ञ** सेवार्थ प्रस्तुत हे ।

गीता ज्ञान मण्डल द्वारा **श्रीमद् भगवद् गीता** का प्रकाशन और निःशुल्क वितरण गीता प्रचार रूपी सद्धर्म सेवा प्रसार का अध्यात्मिक अभियान है; जो (सर्वभूतहितेरताः 4-20) मानव कल्याण तथा विश्वशांति के निमित्त निःष्काम कर्म योग का नैमित्तिक कारण है। **श्रद्धालू-पाठक, परमं पुरुषं दिव्यं चिन्त्यन** (8-8) - **श्रीकृष्ण चिन्तन, मनन** और **माम् नमस्कुरु** (9-34. 18-65) **नमन** की त्रैविद्या साधना द्वारा आत्म स्वरूप की आध्यात्मिक जिज्ञासा जागृत कर मण्डल के इस निष्काम गीता सद्धर्म सेवा प्रसार रूपी ज्ञान यज्ञ को सफल बनाऐंगे तथा (**स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धि लभते नरः** 18-45) स्वकर्मों द्वारा **श्रीकृष्ण साक्षात्कार सिद्धि** का सौभाग्य प्राप्त करेंगे - ऐसी मण्डल की सद्कामना।

श्रीमद् भगवद् गीता '**श्रीकृष्ण तत्त्वदर्शनि**' की **परमात्म संहिता** है। **गोविन्द** का यह **भगवत् गीत - ब्रह्म विद्या, शब्दब्रह्म** का **सामगान, भगवती श्रुति** की संज्ञा से परिभाषित हुआ है। **गोवर्धनधारी गिरिधर योग योगेश्वर** का **सहज सिद्ध योग शास्त्र** है। धर्म धुरंधर धर्माचार्यों ने इसे **वेदमाता गायत्री मंत्र** का परम रहस्य घोषित किया है। ज्ञानीयों, आचार्यों और दर्शन शास्त्र के मर्मज्ञों ने इसे **वेदार्थ सार संग्रह** से नामांकित किया है। कर्मयोगियों ने इसे **पंचम कर्मवेद, जीवन का युद्धोपनिषद्** और **कर्म विजय** का सहजसिद्ध साधन माना है। संतो, भक्तों ने इसे साक्षात **कामधेनु, कल्पवृक्ष, सिद्ध सरस्वती परब्रह्म परमेश्वर** का साक्षात् प्रकट **परमधाम** बतलाया है। **व्यासपथानुगामीयों** ने गीता की पुष्पिका में इसे **ॐ तत् सत् भगवद् गीता** (भगवान का गीत) **उपनिषद, ब्रह्मविद्या, योग शास्त्र** और **धर्म्यामृत संवाद** कहा है।

गीता ग्रन्थ का अलौकिक माहात्म्य दर्शाते हुए स्वयम् **भगवान श्रीकृष्ण** अपनी **दिव्यवाणी में प्रतिज्ञा पूर्वक घोषणा कर रहे हैं - गीता मे हृदयम् पार्थ**! हे पार्थ! गीता मेरा हृदय है। **गीता मे परमम् पदम् ब्रह्म रूपानसंशयः**- गीता ही मेरा परमपद है साक्षात् परब्रह्म स्वरूप है इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। हे पाण्डुपुत्र! **गीता मे परमो गुरु** - गीता ही परम गुरु है। गीता की अगाध अलौकिक महिमा का गुणगान **श्रीभगवान**, पुनः हर्षित हृदय से गीता उपसंहार की फलश्रुति में **श्रीकृष्ण अपने परम वचनों में (श्रुणुमे परमं वचः** 18-64) **गीता की दिव्य महिमा का गान** कर रहे हैंः-

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ।।
न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ।।
अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं सम्वादमावयोः ।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ।।
श्रद्धावाननसूयश्च श्रृणुयादपि यो नरः ।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्य कर्मणाम् ।।
गीता 18:68-71)

हे पार्थ! जो (भक्त) मेरे इस परम गुह्य **गीता शास्त्र** को मेरे भक्तों में कहेगा, वह मुझमें **परा भक्ति** करेगा और निःसन्देह मुझे ही प्राप्त होगा - उससे मेरा सर्वाधिक **प्रियकर्म** (**प्रियकृत्तमः** 18-6) करने वाला मनुष्यों में कोई नहीं है और न ही उससे अधिक प्रिय (**प्रियतरः** 18-69) पृथ्वी में दूसरा होगा। जो पुरुष हम दोनों के **धर्ममय संवाद** का अध्ययन करेगा उसके द्वारा मैं **ज्ञानयज्ञ** से पूजित होऊंगा - ऐसा मेरा मत है। (**ज्ञानयज्ञेन तेनाहम् इष्टस्याम् - इति मे मतिः** 18-70) जो श्रद्धावान नर! मेरे इस (गुह्यतर) **गीता शास्त्र** का श्रवण करेगा, निःसन्देह! वह भी सभी पापों से मुक्त होकर शुभलोकों को प्राप्त करेगा।

जगद्गुरु श्रीकृष्ण को **गीता शास्त्र** का **प्रचार** और **प्रसार** परम प्रिय है। निःसन्देह भूतल पर **श्रीकृष्ण कृपा प्राप्ति, भगवद् साक्षात्कार** तथा **परमधाम** प्राप्ति का सहज **स्वतःसिद्ध साधन - गीता** ही है। **गीता** में वर्णित धर्म ही मानव कल्याण का सर्वश्रेष्ठ धर्म विधान है, **आत्म-परमात्म, ज्ञान–विज्ञान** का सम्पूर्ण **जीवन योग** है। यह क्षुद्र क्षणिक पिण्डाण्ड देही में व्याप्त **आत्मा** और अनन्त साकार ब्रह्माण्ड जगत में व्याप्त **परमात्मा** (जीव और जगत) दोनों में ही समानरूप से **ईश्वरीय शक्ति** की अभिव्यक्ति हो रही है।

मानव जीवन जगत के लिए नहीं अपितु परम पिता परमेश्वर की प्राप्ति के लिए है। **गीता** के दिव्य मंत्र इसी कूटस्थ सत्य की घोषणा कर रहे है- (**मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने** 18-65) (**निवसिष्यसि मय्येव** 12-8), हे नर! हे मानव! तुम देह नहीं देही हो, **आत्मवान ईश्वरीय अंश** हो (**ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः** 15-7) - नित्य अविनाशी अक्षर ब्रह्म में विचरण करो, नश्वर जगत से मुक्त हो कर मेरे सत्य सनातन स्वरूप में निवास करो। मेरी कृपा और अनुकम्पा दुर्बल को भी दिव्य संकल्प का बल प्रदान कर रही है। महा पापात्मा और दीन दुःखियों को भी मुक्ति का अनन्त आनन्द का वरदान दे रही है। स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा महापापियों को भी परमधाम की परमगति प्रदान कर रही है। (**येऽपि स्युः पापयोनयः। स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परांगतिम् ।।** 9-32)

गीता श्रोता अर्जुन, आनन्दित हृदय से गीता माहात्म्य गा रहे हैं। - हे अच्युत! आपके **कृपा प्रसाद** से मेरा अविद्या ग्रस्त मोह नष्ट हो गया है। अहो! मैने परमात्म-स्मृति प्राप्त करली है, मैं सर्व संशय रहित हो गया हूँ, तथा हे **पुरुषोत्तम**! आपके सत्-चित्-आनन्द स्वरूप में मैं स्थित हो गया हूँ। **हे कृष्ण! मैं आपकी आज्ञा का पालन करूंगा। (करिष्ये वचनं तव ।।** 18-73)

अर्जुन अपनी अनन्य भाव भक्ति द्वारा आत्म समर्पण कर **विश्व पुरुष** का साक्षात्कार कर लेते हैं। उनकी अनन्य शरणागति का दृढ संकल्प, उनके सर्व विघ्नों को नष्ट कर देता है। **विजय, श्री** और **कीर्ति** उनका स्वागत और अभिनन्दन कर रही है।

गीता श्रोता संजय भी साक्षात **श्रीकृष्ण** के मुखारविन्द से **गीता** श्रवण कर **गीता** की अद्भुत महिमा का गुण गान कर रहे हैं - ***"मैने श्रीवासुदेव और पार्थ के इस अद्भुत रहस्ययुक्त रोमांचकारक संवाद रूपी इस परम गोपनीय योग को साक्षात् योग योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण के मुखारविंद से सुना है। श्रीहरि के उस अति-अद्भुत रूप और दिव्य - वाणी को पुन: स्मरण करके मेरा मन आश्चर्यचकित होकर बारम्बार हर्षित हो रहा है।"*** (गीता 18/74-77)

श्री महाभारत के रचयिता, **श्रीमद्भागवत ग्रन्थ** के रचनाकार तथा वेदान्त-दर्शन **"ब्रह्म-सूत्र"** के सृष्टा, श्रीकृष्ण द्वैपायन महर्षि वेदव्यास **"गीता महिमा"** में **"व्यास घोषणा"** कररहे हैं:- ***"गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यै:शास्त्रविस्तरै: । या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनि:सृता ।।" - - "गीता को सुगीत कर लेना ही मानव जीवन का परम कर्तव्य है। गीता स्वयं पद्मनाभ श्री विष्णु भगवान के मुखारविन्द से निकली हुई है, – अन्य शास्त्रों के विस्तार से क्या प्रयोजन है?"।***

भक्ति के आचार्य परमहंस **शुकदेव मुनि** उनके शिष्य **गौडपाद** और उनके शिष्य परम्परा में **गोविन्द भगवद्पाद** के शिष्य, **भाष्यकार भगवान आदिशंकराचार्य, – गीता** पर भाष्य रचकर जगद्गुरु की उपाधि से अलंकृत हुए और देश के चारों दिशाओं में **"अद्वैतपीठ"** की स्थापना की थी। उनके वचनानुसार - ***"परम कल्याण ही जिनका प्रयोजन है, ऐसे इन दो प्रकार के धर्मों को और लक्ष्यभूत वासुदेव परब्रह्मरूप परमार्थ तत्व को विशेष रूप से अभिव्यक्त करने वाला यह गीता-शास्त्र, असाधारण प्रयोजन, सम्बन्ध और विषय वाला है।*** *ऐसे इस गीता शास्त्र का अर्थ जान लेने पर समस्त पुरुषार्थों की सिद्धि होती है,* ***अतएव इसकी व्याख्या करने के लिए मैं प्रयत्न कर रहा हूँ।"*** गीता पठनं च धर्मम् - गीता पाठ ही धर्म है - (गीता-शांकर भाष्य उपोद्घात)।

मध्य युगीन सभी सनातनी धर्मगुरुओं और आचार्यों ने अपने अपने सम्प्रदायों को गीता सम्मत बनाना ही अपना चरम लक्ष्य और परम ध्येय माना है। **श्रीरामानुजाचार्य, श्रीमध्वाचार्य, श्रीनिंबार्काचार्य, महाप्रभु वल्लभाचार्य तथा श्रीधर स्वामी सभी** सम्प्रदाय के आचार्यों ने गीता पर भाष्य तथा वार्तिक की रचना करके अपने अपने सम्प्रदायों को **गीता सम्मत** बनाया है। वे सभी धर्मगुरु और आचार्य जन जन में सर्वमान्य हुए, जगत् पूज्य बने, और भगवत् सान्निध्य में पूजित और अर्चित होते रहे हैं।

तेरहवी शताब्दी में **संत ज्ञानेश्वर** ने मराठी भाषा मे गीता का (भावार्थ दीपिका) पद्यानुवाद किया। इनके द्वारा रचित ग्रन्थ **"ज्ञानेश्वरी"** विश्व का सर्वश्रेष्ठ मराठी गीता-काव्य है। उन्होंने **"गीता माहात्म्य"** इस प्रकार गाया है - **"गीता सिद्ध सरस्वती** है, **पारमार्थ की कर्म भूमि** है - **साक्षात श्री भगवान का प्रकट परम धाम** है।"

संत **नामदेव**, भक्त **एकनाथ, समर्थ रामदास** सभी **गीता** भक्त और **गीता** गायक थे। **छत्रपति शिवाजी महाराज की माता "जीजाबाई"** आजीवन गीता गान करती रहीं। उन्होंने अपने पुत्र **"शिवाजी"** के प्राणों में **गीता** के **कर्म, भक्ति** और **ज्ञान**, की त्रैविद्या **शक्ति का संचार** कर दिया था, परिणामस्वरूप वे **विशाल हिन्दुत्व साम्राज्य स्थापित कर छत्रपति पद** से सम्मानित हुए। वीरांगना **महारानी लक्ष्मी बाई** को बाल्य काल में ही **गीता** कण्ठस्थ थी। वे गीतानुसार स्वधर्मपालन में अपने अलौकिक साहस, अपूर्व त्याग और बलिदान की ऐसी अमर वीर गाथा छोड गई हैं, जिनका उदाहरण विश्व के इतिहास में दुर्लभ है।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण में **स्वामी विवेकानन्द** और **स्वामी रामतीर्थ** ने **गीता** ज्ञान आख्यानों के प्रवचनों से पश्चात्य जगत को अत्यधिक प्रभावित कर उन्हें अध्यात्म ज्ञान की ओर मोड दिया। परिणाम स्वरूप आज पाश्यात्य जगत में लगभग 14 से अधिक भाषाओं में 1400 से अधिक **गीता** के प्रकाशन हो चुके हैं। विदेशी विद्वानों के आज **"गीता"** पर **भाष्य, आलोचना, अनुवाद, रूपांतर - साहित्य, निबन्ध, लेख, व समालोचनाएं** उपलब्ध है। वे सभी उदार हृदय से **गीता की दिव्य महिमा** का गुणगान कर रहे हैं।

आधुनिक युग में **राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी, गीता** की महिमा इस प्रकार गारहे हैं, **"गीता मेरी माता है"**, जब जब मुझ पर संकट आते रहे, मैं **गीता माता** की शरण लेता रहा, **गीता** मेरे लिए सचमुच **कामधेनु** है; किसी भी हिन्दू को गीता ज्ञान से रहित नहीं होना चाहिए। गान्धी जी नित्य **गीता** पाठ करते थे। **गीता** प्रवचन करने और **गीता** सत्संग सुनने में उनकी अगाध श्रद्धा थी। उन्होंने **"गीता शब्द कोश"** की भी रचना की है।

श्री दीनानाथ दिनेश भार्गव का गीता पर पद्यानुवाद **हरिगीता** तथा **गीताज्ञान** ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। **लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने गीता** पर **"कर्मयोग रहस्य"** ग्रन्थ की रचना की। **संत विनोबा भावे** अजीवन गीता प्रवचन करते रहे। डॉ. एस. राधाकृष्णन ने **गीता** पर समालोचना ग्रन्थ रचा। **महर्षि** अरविन्द के **गीता निबन्ध** विश्वप्रसिद्ध हैं।

सारांश यह कि, **गीता ज्ञान मण्डल द्वारा गीता धर्म प्रसार** के इस अलौकिक- **"स्वध्याय ज्ञान यज्ञ"** को विज्ञ-सुधी जन भली प्रकार जानते हैं। **गीता धर्म्यामृत चिन्तन का अध्यात्मिक अभियान** उपरोक्त कथित **भगवद्-घोषणा, व्यास वाणी, जगद्गुरुओं, धर्माचार्यों, दार्शनिकों, तत्वज्ञानियों, पारमार्थी संतों, भक्तों और महात्माओं के सत्य वचनों को निःसन्देह! शत-प्रतिशत चरितार्थ कर रहा है। धर्म प्रेमी श्रद्धालू पाठक मण्डल के इस महत्तर गीता धर्मप्रसार रूपी स्वाध्याय ज्ञान यज्ञ को सफल बनाएंगे - ऐसी सद् कामना ।**

मण्डल - गाता प्रेमी **श्रीमती निर्मला गुप्ता** का आभारी है, जिन्होनें गीता प्रकाशन के लिए कुछ अंश तक आर्थिक सहयोग देकर **'गीता ज्ञान यज्ञ'** की सफलता के लिए परम पुरूषार्थ सिद्धि का सौभाग्य प्राप्त किया ह ।

'परम ब्रह्म श्रीकृष्ण, इन्हे श्रेय और प्रेय प्रदान करें। इति,

।। जय श्री कृष्ण ।।

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी
29-08-2013

श्रीकृष्ण - चरण - आश्रयी
ठाकुर भगवान सिंह
मंत्री
गीता ज्ञान मण्डल
Cell : 09885920571

पत्राचार: Siddartha Harini Apartments,
Flat No. 304 (D), II Floor, Street No.6,
Opp. MRO Office, Lower Tank Bund Road,
Hyderabad - 500 080 (A.P.) India

ॐ गं गणपतये नमः

श्रीगणेश गायत्री मन्त्र

ॐ एक दन्ताय विद्महे वक्र तुण्डाय धीमहि ।
तन्नो दन्तिः प्रचोदयात् ।।

नमस्ते ब्रह्म रूपाय । विष्णु रूपाय ते नमः । नमस्ते रूद्र रूपाय ।।
करि रूपाय ते नमः । विश्वरूप स्वरूपाय । नमस्ते ब्रह्म चारिणे ।।
भक्ति प्रियाय देवाय । नमस्तुभ्यम् विनायकः । लम्बोदर नमस्तुभ्यम् ।।
सततम् मोदकम् प्रियः । निर्विघ्नम् कुरू मे देव । सर्व कार्येषु सर्वदा ।।

संक्षिप्त श्रीगणपत्यथर्व शीर्षोपनिषत्

नमस्ते गणपतये त्वमेव प्रत्यक्षम् तत्वमसि ।
त्वमेव केवलम् कर्ताऽसि त्वमेव केवलम् धर्ताऽसि ।
त्वमेव केवलम् हर्ताऽसि त्वमेव केवलम् सर्वम् ।
खल्विदम् ब्रह्मासि ।
त्वम् साक्षादात्माऽसि नित्यम् । ऋतम् वच्मि सत्यम् वच्मि ।।
त्वम् ब्रह्माः त्वम् विष्णुः । त्वम् रूद्रः त्वम् इन्द्रः ।।
त्वम् अग्निः त्वम् वायुः । त्वम् सूर्यः त्वम् चन्द्रमा ।।
त्वम् ब्रह्म भू भुर्वःस्वरोम् ।
आवाह्नम् न जानामि न जानामि तवार्चनम् ।
पूजाम् चैव न जानामि क्षमस्व गणेश्वर ।।
अन्यथा शरणम् नास्ति त्वमेव शरणम् मम् ।
तस्मात्कारूण्य भावेन रक्षस्व विघ्नेश्वर ।।

" GODDESS MAHALAKṢMI "

।। ॐ महालक्ष्म्यै नमः ।।

।। ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद ।।
।। श्रीं ह्रीं श्रीं महालक्ष्म्यै नमः ।।

विष्णुपत्नीम् महीं देवी माधवीम् माधवप्रियाम् ।
लक्ष्मीम् प्रियसखीम् देवीम् नमाम्यच्युतवल्लभाम् ।।

।। ॐ ।। महालक्ष्मी च विद्महे ।।
।। विष्णुपत्नी च धीमहि ।।
।। तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात् ।।

ॐ नारायणि नमोऽस्तुते

गीता श्रवण से पूर्व अर्जुन द्वारा श्री दुर्गा देवी का स्तवन

भगवान श्रीकृष्ण ने कौरव सेना की ओर दृष्टिपात किया और युद्ध का समय उपस्थित देख **अर्जुन** के हित के लिए इस प्रकार कहा, हे महाबाहो ! युद्ध के आरम्भ में शत्रुओं को पराजित करने के लिए पवित्र होकर तुम **दुर्गा देवी** की स्तुति करो । भगवान वासुदेव के ऐसी आज्ञा देने पर **अर्जुन** रथ से नीचे उतर पडे और हाथ जोड कर **श्रीदुर्गा** का स्तवन करने लगे : -

''मन्दराचल पर निवास करने वाली सिद्धों की सेना नेत्री आर्ये ! तुम्हें बारम्बार नमस्कार है । तुम्हीं **कुमारी, काली, कापाली, कपिला, कृष्णपिंगला, भद्रकाली** और **महाकाली** आदि नामों सें प्रसिद्ध हो; तुम्हें बाररम्बार प्रणाम है । दुष्टों पर प्रचण्ड कोप करने के कारण तुम **चण्डी** कहलाती हो, भक्तों को संकट से तारने के कारण **तारिणी** हो, तुम्हारे शरीर का दिव्य वर्ण बहुत ही सुन्दर है; मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ । महाभागे तुम्हीं सौम्य और सुन्दररूप वाली **कात्यायनी** हो और तुम्ही विकराल रूप धारिणी **काली** हो । तुम्हीं **विजया** और **जया** के नाम से विख्यात हो । मोर पंख की तुम्हारी ध्वजा है, नाना प्रकार के आभूषण तुम्हारे अंगों की शोभा बढ़ाते हैं । त्रिशूल,

खड्ग और खेटक आदि आयुधों को धारण करती हो। नन्दगोप के वंश में तुमने अवतार लिया था, इस लिए **गोपेश्वर श्रीकृष्ण** की तुम छोटी बहन हो; गुण और प्रभावों में सर्वश्रेष्ठ हो महिषासुर का रक्त बहाकर तुम्हे बडी प्रसन्नता हुई थी। कुशिक-गोत्र में अवतार लेने के कारण **कौशिकी** नाम से भी प्रसिद्ध हो, पीताम्बर धारण करती हो। जब तुम शत्रुओं को देखकर अट्टहास करती हो, उस समय तुम्हारा मुख चक्र के समान उद्दीप्त हो उठता है। युद्ध तुम्हे बहुत ही प्रिय है, मैं तुम्हें बारम्बार प्रणाम करता हूँ। **उमा, शाकंभरी, श्वेता, कृष्णा, कैटभ नाशिनी, हिरण्याक्षी, विरूपाक्षी और सुधूम्राक्षी** आदि नाम धारण करने वाली देवि ! तुम्हे अनेकों बार नमस्कार है। तुम वेदों की श्रुति हो, तुम्हारा स्वरूप अत्यन्त पवित्र है; वेद और ब्राह्मण तुम्हें प्रिय हैं। तुम्हीं जातवेदा अग्नि की शक्ति हो, भूलोक के मंदिरों में तुम्हारा नित्य निवास है। तुम समस्त विद्याओं में **ब्रह्मविद्या** और देह धारियों की महानिद्रा हो। **भगवती!** तुम कार्तिकेय की माता हो, दुर्गम स्थानों में वास करनेवाली हो। **स्वाहा, स्वधा, कला, काष्ठा, सरस्वती, वेदमाता सावित्री** तथा **वेदान्त** – ये सब तुम्हारे ही नाम हैं।

महादेवी ! मैंने विशुद्ध हृदय से तुम्हारा स्तवन किया है, तुम्हारी कृपा से इस रणांगण में मेरी सदा ही जय हो। मां तुम घोर जंगल में भयपूर्ण दुर्गम स्थानों में, भक्तों के घर में तथा पाताल में भी नित्य निवास करती हो। युद्ध में दानवों को हराती हो। तुम्ही **जम्भनी, मोहिनी, माया, ह्री तथा संध्या, प्रभावती, सावित्री** और **जननी** हो। **तुष्टि, पुष्टि, धृति** तथा सूर्य-चन्द्रमा को बढानेवाली **दीप्ति** भी तुम्ही हो। तुम्ही ऐश्वर्यवानों की विभूति हो। युद्ध भूमि में सिद्ध और चारण तुम्हारा दर्शन करते हैं।''

अर्जुन की भक्ति देख कर मनुष्यों पर दया करने वाली **श्रीदुर्गा देवी भगवान श्रीकृष्ण** के सामने आकाश में प्रकट हुई और बोलीं –

''पण्डुनन्दन ! तुम थोडे ही दिनों में शत्रुओं पर विजय प्राप्त करोगे। तुम साक्षात् **नर** हो, **नारायण** तुम्हारे सहायक हैं। रण में शत्रुओ की कौन कहे, साक्षात् वज्रधारी इन्द्र से भी तुम अजेय हो।''

वर दायिनी देवी इस प्रकार कहकर क्षणभर में अन्तर्धान हो गयी। वरदान पाकर अर्जुन को अपनी विजय का विश्वास हो गया। फिर वे अपने रथ पर आ बैठे। **भगवान श्रीकृष्ण** और **अर्जुन** दिव्य शंख बजाने लगे।

जहां धर्म है वहां ही **द्युति** और **कान्ति** है, जहां लज्जा है, वहाँ ही **लक्ष्मी** और सुबुद्धि है। जहां धर्म है, वहां **श्रीकृष्ण** है, और जहां **श्रीकृष्ण** हैं, वहाँ ही **जय, विजय** और **कीर्ति** है।''

(भीष्मपर्व-महाभारत)

।।श्रीमद् भगवद्गीता पर्वणि-श्री दुर्गा स्तोत्रम्।।

(मूल - संस्कृत - पाठ)

संजय उवाच।

धार्तराष्ट्र बलं दृष्ट्वा युध्दाय समुपस्थितम् ।
अर्जुनस्य हितार्थाय कृष्णो वचनमब्रवीत् ।।१।।

श्री भगवानुवाच ।

शुचिर्भूत्वा महाबाहो संग्रामाभिमुखे स्थित: ।
पराजयाय शत्रूणां दुर्गास्तोत्र मुदीरय ।।२।।

संजय उवाच ।

एव मुक्तोऽर्जुन: संख्ये वासुदेवेन धीमता ।
अवतीर्य रथात् पार्थ: स्तोत्रमाह कृताञ्जलि: ।।३।।

अर्जुन उवाच।

नमस्ते सिद्ध सेनानि आर्ये मन्दर वासिनि ।
कुमारी कालि कापालि कपिले कृष्ण पिंगले ।।४।।
भद्रकालि नमस्तुभ्यं महाकालि नमोऽस्तुते ।
चण्डि चण्डे नमस्तुभ्यं तारिणि वर वर्णिनि ।।५।।
कात्यायनि महाभागे करालि विजये जये ।
शिखिपिच्छ ध्वजधरे नाना भरण भूषिते ।।६।।
अट्टशूल प्रहरणे खड्ग खेटक धारिणि।
गोपेन्द्र स्यानुजे ज्येष्टे नन्द गोप कुलोद्भवे ।।७।।
महिषासृक प्रिये नित्यं कौशिकि पीतवासिनि ।
अट्टहासे कोक मुखे नमस्तेऽस्तु रणप्रिये ।।८।।
उमे शाकम्भरी श्वेते कृष्णे कैटभनाशिनि ।
हिरण्याक्षि विरूपाक्षि सुधूम्राक्षि नमोऽस्तुते ।।९।।
वेदश्रुति महापुण्ये ब्रह्मण्ये जातवेदसि ।
जम्बू कटक चैत्युषु नित्यं सन्निहितालये ।।१०।।
त्वं ब्रह्मविद्या विद्यानां महानिद्रा च देहिनाम् ।
सकन्दमातर्भगवति दुर्गे कान्तारवासिनि ।।११।।
स्वाहाकार: स्वधाचैव कला काष्टा सरस्वती ।

सावित्री वेदमाता च तथा वेदान्त उच्यते ॥१२॥
स्तुताऽसि त्वं महादेवि विशुध्देनान्तरात्माना ।
जयो भवतु मे नित्यं त्वत्प्रसादाद्रणाजिरे ॥१३॥
कान्तारभय दुर्गेषु भक्तानां चालयेषु च ।
नित्यं वससि पाताले युद्धे जयसि दानवान ॥ १४॥
त्वं जंभनि मोहिनि च माया ह्री: श्रीस्तथैवच ॥
सन्ध्या प्रभावती चैव सावित्री जननी तथा ॥१५॥
तुष्टिः पुष्टिर्धृतिर्दिप्तिश्चन्द्रादित्य विवर्धिनी ।
भूतिर्भूतिमतां संख्ये वीक्षस्ये सिध्द चारणैः ॥ १६॥

संजय उवाच ।

ततः पार्थस्य विज्ञाय भक्तिं मानववत्सला: ।
अन्तरिक्ष गतोवाच गोविन्द स्याग्रतः स्थिता ॥१७॥

देव्युवाच ।

स्वल्पेनैवे तु कालेन शत्रून जेष्यसि पाण्डव ।
नरस्त्वमसि दुर्धर्ष नारायण सहायवान् ॥१८॥
अजेयस्तवं रणेऽरीणामपिवज्र भृतः स्वयम् ।
इत्वेव मुक्ता वरदा क्षणे नान्तर धीयत ॥१९॥
लब्धा वरं तु कौन्तेयो मेने विजयमात्मनः ।
आरूरोह ततः पार्थो रथं परम सम्मतम् ॥२०॥
कृष्णार्जुनावेकरथौ दिव्यौ शंखो प्रदध्मतुः ।
य इदं पठते स्तोत्रं कल्प उत्थाय मानवः ॥२१॥

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि
श्रीमद्भगवद् गीता पर्वणि श्रीदुर्गास्तोत्रे
त्रयोविंशोऽध्यायः॥

ॐ

॥ श्रीकृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥

भगवान श्रीकृष्ण की वांगमयी मूर्ति
श्रीमद् भगवद् गीता

वक्त्राणि पञ्च जीनीहि पञ्चाध्यायाननुक्रमात् ।
दशाध्याया भुजाश्चैकमुदरं द्वै पदाम्बुजे ॥ १॥

एवमष्टादशाध्यायी वाङ्मयी मूर्तिरीश्वरी ।
जानीहि ज्ञानमात्रेण महापातक नाशिनी ॥ २॥

अर्थः गीता के पांच अध्यायों को क्रम से **भगवान श्रीकृष्ण** के पांच मुख जानो, दस अध्यायों को दस भुजाएं, एक अध्याय को उदर तथा दो अध्यायों को उनके चरण कमल जानो। अठ्ठारह अध्यायों वाली **श्रीमद् भगवद्गीता, भगवान श्रीकृष्ण** की ईश्वरीय-मूर्ति है; जिसे जान लेने मात्र से ही महापातकों का नाश हो जाता है ।

भगवती श्रुति - श्रीमद् भगवद्गीता के अठ्ठारह नाम

गीता गंगा च गायत्री सीता सत्या सरस्वती ।
ब्रह्म विद्या ब्रह्म वल्ली त्रिसन्ध्या मुक्तिगेहिनी ॥ १॥

अर्धमात्रा चिदानन्दा भवघ्नी भयनाशिनी ।
वेदत्रयी परानन्ता तत्त्वार्थ ज्ञान मञ्जरी ॥ २॥

इत्येतानि जपेन्नित्यं नरो निश्चल मानसः ।
ज्ञान सिद्धिं लभेच्छीघ्रं तथान्ते परमं पदम् ॥ ३॥

—*—

गीता मे वर्णित भगवान श्रीकृष्ण के चालीस नाम

अनन्त, अनन्तरूप, अनन्तवीर्य, अप्रतिम प्रभाव, अरिसूदन, कमल पत्राक्ष, कृष्ण, केशव, केशिनिनन्दन, गोविन्द, जगत्पते, जगन्निवास, जनार्दन, देव, देवदेव, देववर, देवेश, परमेश्वर, पुरुषोत्तम, प्रभो, भगवान, भूत-भावन्, भूतेश, मधुसूदन, महात्मन, महाबाहो, माधव, यादव, योगिन, योगेश्वर, वार्ष्णेय, विश्वमूर्ति, विश्वरूप, विश्वेश्वर, विष्णो, सखे, सर्व, सहस्त्रबाहो, हृषीकेश ।

श्री अर्जुन के बाईस नाम

अनघ, अर्जुन, कुरुनन्दन, कुरुप्रवीर, कुरुक्षेत्र, कुरुसत्तम, कौन्तेय, गुडाकेश, तात, देहभृताम्वर, धनञ्जय, परंतप, पाण्डव, पार्थ, पुरुषर्षभ, पुरुषव्याघ्र, भरतश्रेष्ठ, भरतर्षभ, भरतसत्तम, भारत, महाबाहो, सव्यसाचिन।

॥ श्रीकृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥

गीता सुगीता कर्तव्यम् (महर्षि वेदव्यास)

श्रीमद् भगवद् गीता - परिचय

गीतावतरण	:	मार्ग शीर्ष एकादशी (गीता जयंती)
स्थान	:	कुरुक्षेत्र (ज्योतिसर)
वक्ता	:	भगवान श्रीकृष्ण
श्रोता	:	श्री अर्जुन
अनुवक्ता	:	श्री संजय
अनुश्रोता	:	श्री धृतराष्ट्र
संकलन कर्ता	:	श्री महर्षि वेदव्यास
संचयन कर्ता (लिपीकार)	:	श्री गणेश जी
गीता में वर्णित पात्र	:	भगवान श्रीकृष्ण श्री अर्जुन श्री सञ्जय - श्री धृतराष्ट्र
गीता के अध्याय	:	अठ्ठारह अध्याय
श्लोक संख्या	:	सात सौ श्लोक (सप्तशति गीता)
पद संख्या	:	9,334
अक्षर संख्या	:	24,457

गीता मे उवाच तथा कथित श्लोक संख्या :

पात्र	उवाच	श्लोक संख्या
श्री धृतराष्ट्र	1	1
श्री सञ्जय	9	41
श्री अर्जुन	21	84
श्री भगवान	28	574
कुल पात्र 4	59	700

गीता में कुल प्रकरण : सत्तहत्तर प्रकरण (77)

गीता में अर्जुन द्वारा कियेगये कुल प्रश्न	:	28 प्रश्न
गीता में वर्णित श्री भगवान की विभूतियां	:	98 अठ्ठानों विभूतियां
गीता के प्रधान विषय	:	कर्म योग, भक्ति योग, ज्ञान योग
गीता में वर्णित यज्ञ भेद	:	11 ग्यारह प्रकार के यज्ञों का वर्णन
गीता की गणना	:	उपनिषद, ब्रह्मविद्या, योग शास्त्र, भक्ति शास्त्र, धर्मशास्त्र, शरणागति शास्त्र
गीता भाष्यकार	:	जगद्‌गुरु आदि शंकराचार्य श्रीश्रीश्री स्वामी रामानुजाचार्य श्री निम्बार्काचार्य श्री श्रीधरस्वामी, श्री निलकण्ठ स्वामी
गीता पद्यानुवाद	:	संत ज्ञानेश्वर - ज्ञानेश्वरी गीता - मराठी श्री हरिगीता - श्री दीनानाथ भार्गव गीता हिन्दी पद्य भावानुवाद श्री अवध नारायण शर्मा माधव गीता - श्रीमती माधवी लता शुक्ल जन-गीता (खडी बोली) नागर गीता (अवधि भाषा) — डॉ हरिवंशराय बच्चन
गीता व्याख्याकार	:	विश्व की लगभग चालीस भाषाओं में गीता पर कुल व्याख्याएं, आलोचनाएं तथा अनुवाद तीन हजार से भी अधिक संख्या में उपलब्ध हैं।

॥ श्री कृष्णंवन्दे जगद्गुरुम् ॥

श्रीमद् भगवद्गीता - माहात्म्य

गीताशास्त्रमिदं पुण्यं यः पठेत्प्रयतः पुमान् ।
विष्णोः पदमवाप्नोति भयशोकादिवर्जितः ॥1॥

गीताध्ययनशीलस्य प्राणायामपरस्य च ।
नैव सन्ति हि पापानि पूर्वजन्मकृतानि च ॥2॥

मलनिर्मोचनं पुंसां जलस्नानं दिने दिने ।
सकृद्गीताम्भसि स्नानं संसारमलनाशनम् ॥3॥

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः ।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता ॥4॥

भारतामृतसर्वस्वं विष्णोर्वक्त्राद्विनिःसृतम् ।
गीतागङ्गोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥5॥

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥6॥

एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतमेको देवो देवकीपुत्र एव ।
एको मन्त्रस्तस्य नामनि यानि कर्माण्येकं तस्य देवस्य सेवा ॥7॥

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभगङ्गम् ।

लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ॥

॥ श्रीकृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥

निवेदन

श्रीकृष्ण द्वैपायन महर्षि वेद-व्यास - महाभारत ग्रन्थ के रचयिता तथा अठ्ठारह पुराणों के वक्ता और श्रीमद् भागवत संहिता के निर्माता अपनी दिव्य **व्यास-घोषणा** कर रहे है:—

एकम् शास्त्रम् देवकी पुत्र गीतम् - 'देवकी पुत्र श्रीकृष्ण का **'श्रीमद् भगवद्गीता'** ही एक मात्र महान धर्मशास्त्र है; यह वेदार्थसार संग्रह है। तथा गीता को सुगीत कर लेना **(गीता सुगीता कर्तव्यम्)** मानव जीवन का परम कर्तव्य है। **किम् अन्य शास्त्रे विस्तरे;** अन्य शास्त्रों के विस्तार से क्या प्रयोजन है?

भगवान श्रीकृष्ण अपने परम वचन अर्जुन को सुना रहे हैं - **गीता मे हृदयम् पार्थ!** हे पार्थ! गीता मेरा हृदय है। **वांगमयी मूर्ति ईश्वरीय** - गीता साक्षात् अक्षरों की (वांगमयी) ईश्वरीय मूर्ति है।

पर-ब्रह्म श्रीकृष्ण गीता महिमा का गान कर रहे हैं - **हे अर्जुन! जो पुरुष मेरे इस रहस्य युक्त गोपनीय गीता शास्त्र को मेरे भक्तों में कहेगा - वह निसन्देह! मुझको ही प्राप्त होगा।**

श्री भगवान परम वक्तव्य में मानव को आश्वासन दे रहे हैं - **''हे पार्थ! गीता प्रचार से बढ़कर मेरा प्रिय कार्य करने वाला मनुष्यों में कोई भी नहीं हैं तथा पृथ्वी भर में उससे बढ़कर 'मेरा प्रिय' दूसरा कोई भविष्य में होगा भी नहीं। हे पाण्डुनन्दन! जो पुरुष हम दोनों के इस धर्म सम्वाद रूपी गीता शास्त्र को पढ़ेगा - उसके द्वारा मैं ज्ञान यज्ञ से पूजित होऊंगा - ''ऐसा मेरा मत है''।**

गीता धर्म रथ के सारथी जगद् गुरु श्रीकृष्ण हैं। गीता शास्त्र में कहा गया धर्म ही - वेद (श्रुती) उपनिषद दर्शन ग्रन्थों तथा स्मृति ग्रन्थो में वर्णित सभी धर्मों से सर्वश्रेष्ठ परम धर्म है। गीता समस्त धर्म शास्त्रों का मुकट मणि है। गीता में वर्णित धर्म की विशेषता यह है कि -विश्व का दिव्य ज्ञान, अनन्य भक्ति, अलौकिक कर्म के सिद्धान्तों को - मानव जीवन के समस्त व्यवहारिक कर्मों में उतार लाना है। **गीता का कर्म ज्ञान मानव जीवन का महामंत्र है। कर्म ही परमेश्वर की परा पूजा है। मानव जीवन को-गीता यज्ञ कर्म, यज्ञार्थ कर्म, योग कर्म बना देती है।** गीता का कर्म, ज्ञान, भक्ति का तेजस्वी सिद्धान्त - मानव जीवन को सुव्यवस्थित, स्वस्थ्य, सुचारु और सर्वज्ञ पद प्राप्ति का सहजयोग प्रदान करता है। **गीता धर्म नर को नारायण का परम पद प्रदान करने की श्रीकृष्ण की उदार भागवत् अनुकम्पा है।**

श्रीकृष्ण की योग दीक्षा है। गीता का नित्य योग, सहजयोग, सनातन योग, नर के लिए नारायण का दिव्य अनुग्रह है।

श्रीकृष्ण कह रहे हैं - **'मत्-परायण'** - मेरे परायण होजाओ - **'मद्भाव आगत्'** मेरे भागवत भाव को प्राप्त कर लो - 'मामेवैष्यसी' - मुझ में ही निवास करेंगे **- मनुष्य के लिए यही श्रीकृष्ण का उदार और विशाल भगवद् आश्वासन है।**

गीता की भाषा - असाधारण चमत्कारी और रहस्य मयी है। भगवान का समग्रज्ञान उनका सांगोपांग विराट विश्वरूप दर्शन और उनमें ऐसा प्रवेश की मानव का सम्पूर्ण जीवन भगवन्-मय हो जाए - यही मानव जीवन की सर्वोच्च सिद्धि है। **स्वयं भगवान सहायक, सहयोगी और समुद्धर्ता बन गए है।**

गीता की शिक्षा मानव को दिव्य ज्ञान में प्रतिष्ठित कराना है। दिव्य भगवत् प्रेम प्राप्ति का अनुभव कराना है। **गीता व्यावहारिक जीवन को भगवन्मय बनाने के लिए सहज तीन प्रकार के तप का वर्णन कर रही है, शरीर तप, वाणी तप और मानस तप का दैवी ज्ञान विज्ञान का सहज योग मार्ग** मानव के सम्मुख प्रस्तुत करती है, जिसका आचरण कर मानव परम भागवत पद प्राप्त कर लेता है।

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के शुभ पर्व पर मण्डल द्वारा प्रकाशित श्रीमद् भगवद्गीता (अष्टम-संस्करण-मूल संस्कृत, हिन्दी इग्लिंश अनुवाद) धर्म अमृत महा प्रसादी का निःशुल्क वितरण विश्वशांति और लोक कल्याण का दिव्य ज्ञान यज्ञ है । गीता प्रेमी श्रद्धालू भक्त जनों के लिए श्रीकृष्ण कृपा प्राप्ति का भक्ति उपहार हैं ।

गीता पाठ **स्वाध्याय ज्ञान यज्ञ** है, **श्रीकृष्ण उपासना का जीवन-यज्ञ, तपो-यज्ञ और ब्रह्म-यज्ञ** है।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

श्री कृष्ण जन्माष्टमी
29-08-2013

निवेदक
ठाकुर गौरी शंकर सिंह
B.com

INDEX

CHAPTER		PAGE No.
I.	The Yoga of Dejection of Arjuna - The Grief of Arjuna: अर्जुन विषादयोग	1-16
II.	The Yoga of Knowledge - Sankhyayoga: सांख्य योग	17-44
III.	The Yoga of Action - Karmayoga: कर्म योग	45-60
IV.	The Yoga of Renunciation of Action in Knowledge: ज्ञानकर्म सन्यास योग	61-77
V.	The Yoga of Renunciation of Action: कर्म सन्यास योग	78-89
VI.	The Yoga of Meditation - Self Control: आत्म संयम योग	90-108
VII.	The Yoga of Knowledge and Discrimination - Jnānā & Vijnana: ज्ञान विज्ञान योग	109-120
VIII.	The Yoga of Imperishable Brahman: अक्षर ब्रह्म योग	121-132
IX.	The Yoga of Royal Knowledge and of Royal Mystery: राज विद्या राज गुह्य योग	133-146
X.	The Yoga of Divine Manifestation: विभूति योग	147-162
XI.	The Yoga of Vision of Universal form - (the Cosmic Body): विश्वरूप दर्शन योग	163-187
XII.	The Yoga of Devotion: भक्ति योग	188-195
XIII.	The Yoga of Discrimination between the kśetra and the kśetrajna: क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विभाग योग	196-209
XIV.	The Yoga of Distinction between three Gunās: गुणत्रय विभाग योग	210-220
XV.	The Yoga of the " Supreme Spirit " - PURUSOTTAMA: पुरुषोत्तम योग	221-230
XVI.	The Yoga of Distinction between the Divine and Demonic Destines: दैवासुर सम्पद विभाग योग	231-241
XVII.	The Yoga of Distinction of three kinds of Faith: श्रद्धात्रय विभाग योग	242-252
XVIII.	The Yoga of Renuciation - MOKSĀ - Sannyāsa Yoga: मोक्ष-सन्यास योग	253-282
	(i) श्रीमद् भगवद्गीता आरती	283
	(ii) गीता संदर्भग्रन्थ (सम्पूर्ण भगवद्गीता एक प्रष्ठ पर कम्प्यूटर तकनीक)	284

रंगीन चित्र सूची

(विश्व कल्याणार्थ - श्रीकृष्ण प्रेमी भक्तों में नि:शुल्क वितरणार्थ)

"भक्ति वेदान्त बुक ट्रस्ट आर्ट कलेक्शन इसकॉन - ISKCON" - द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ कृष्ण आर्ट - KRSNA ART - के सौजन्य से साभार उद्धृत बारह विभिन्न रंगीन चित्र

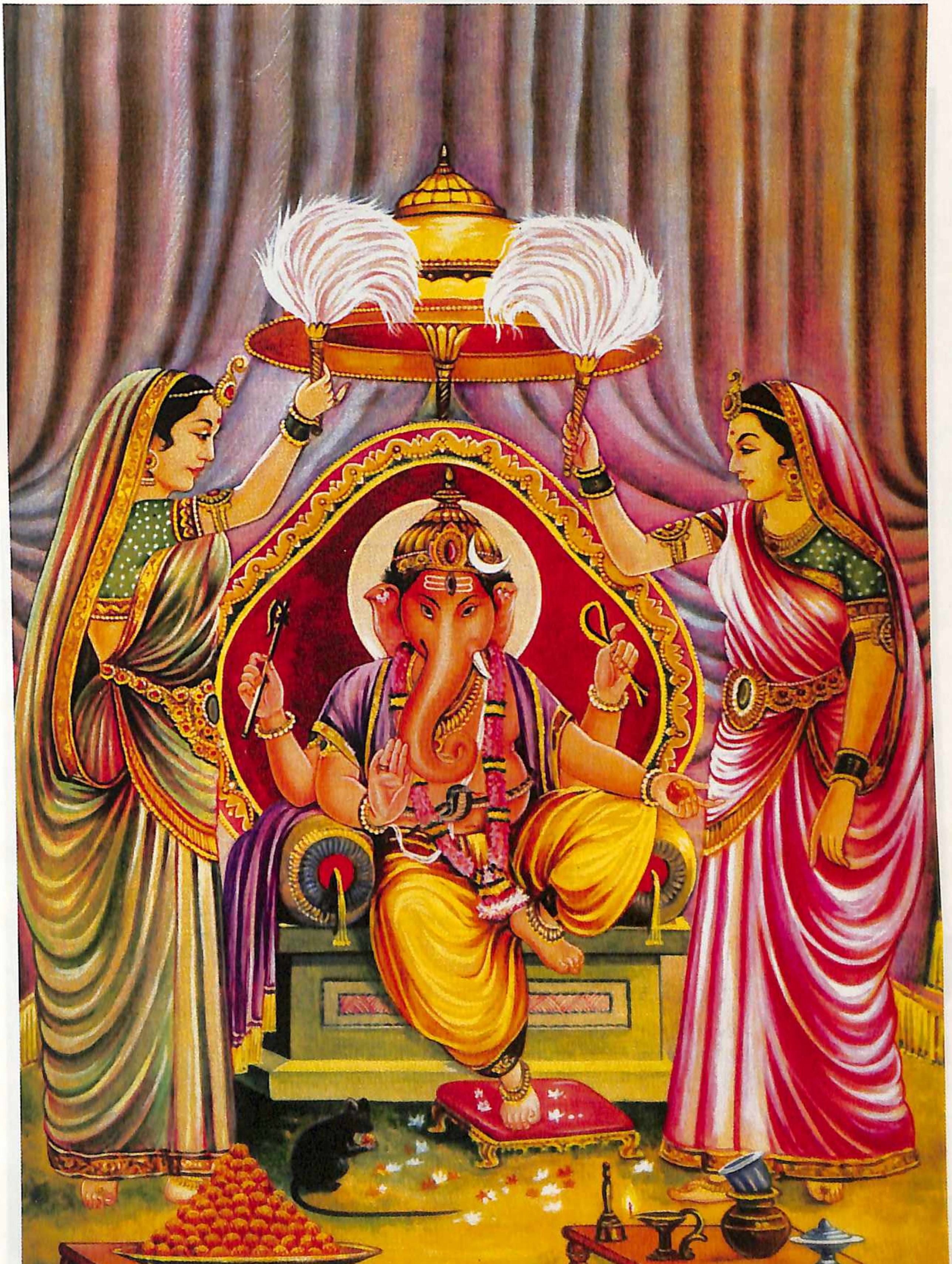

सिद्धि-बुद्धिसहित प्रथम पूज्य भगवान् गणेश

Kṛṣṇa in Vrundāvana forest

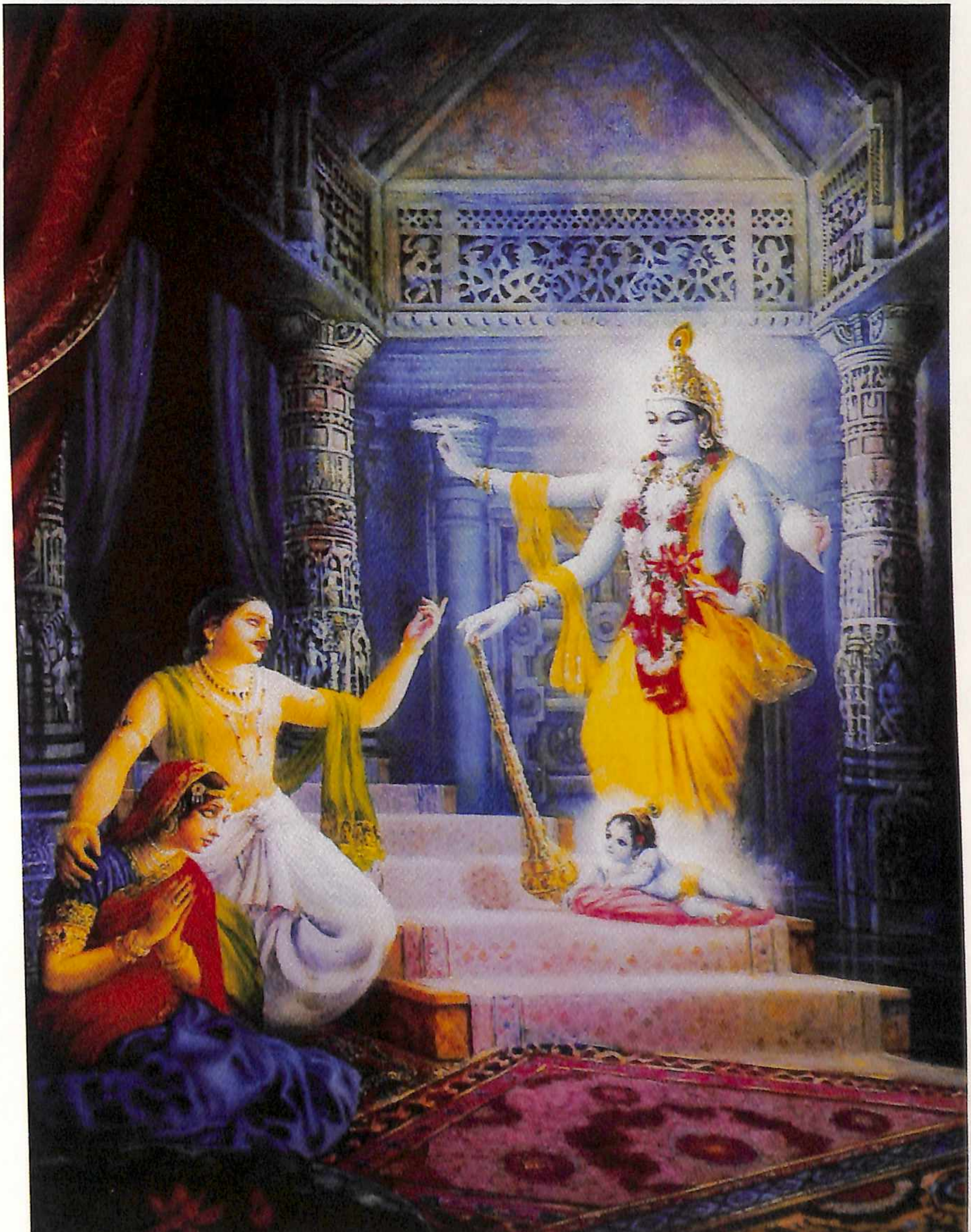

The birth of Lord Kṛṣṇa

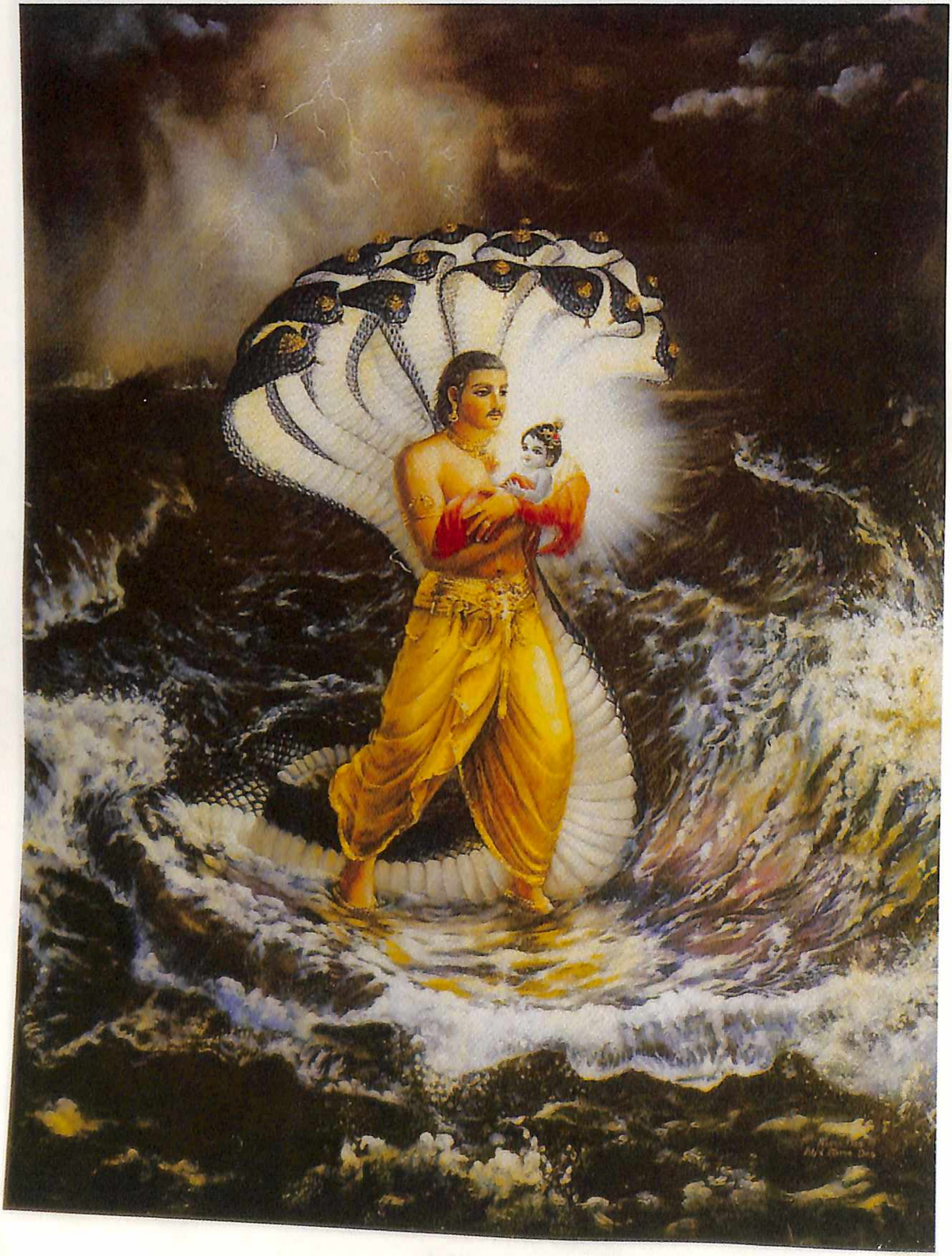

Vasudeva carries Kṛṣṇa to Vṛndāvana

Krsna ṣhows mother YÅSODĀ THE UNIVERSE IN HIS MOUTH

॥ श्रीकृष्णं वन्दे जगद्गुरूम् ॥

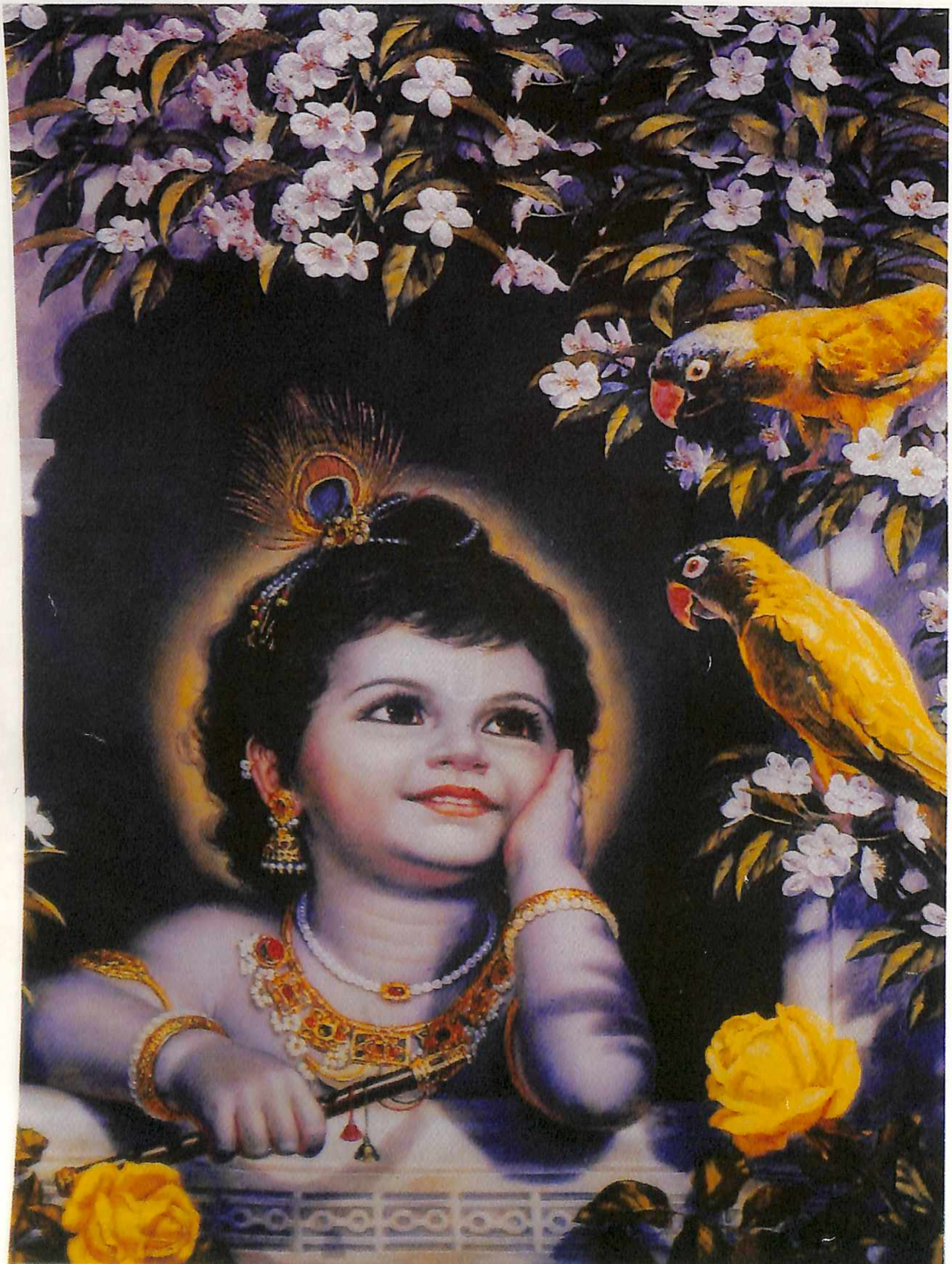

BABY KṚṢṆA

Kṛṣṇa and Arjuna blow thier conch bells

।। श्रीकृष्णं वन्दे जगद्गुरूम् ।।

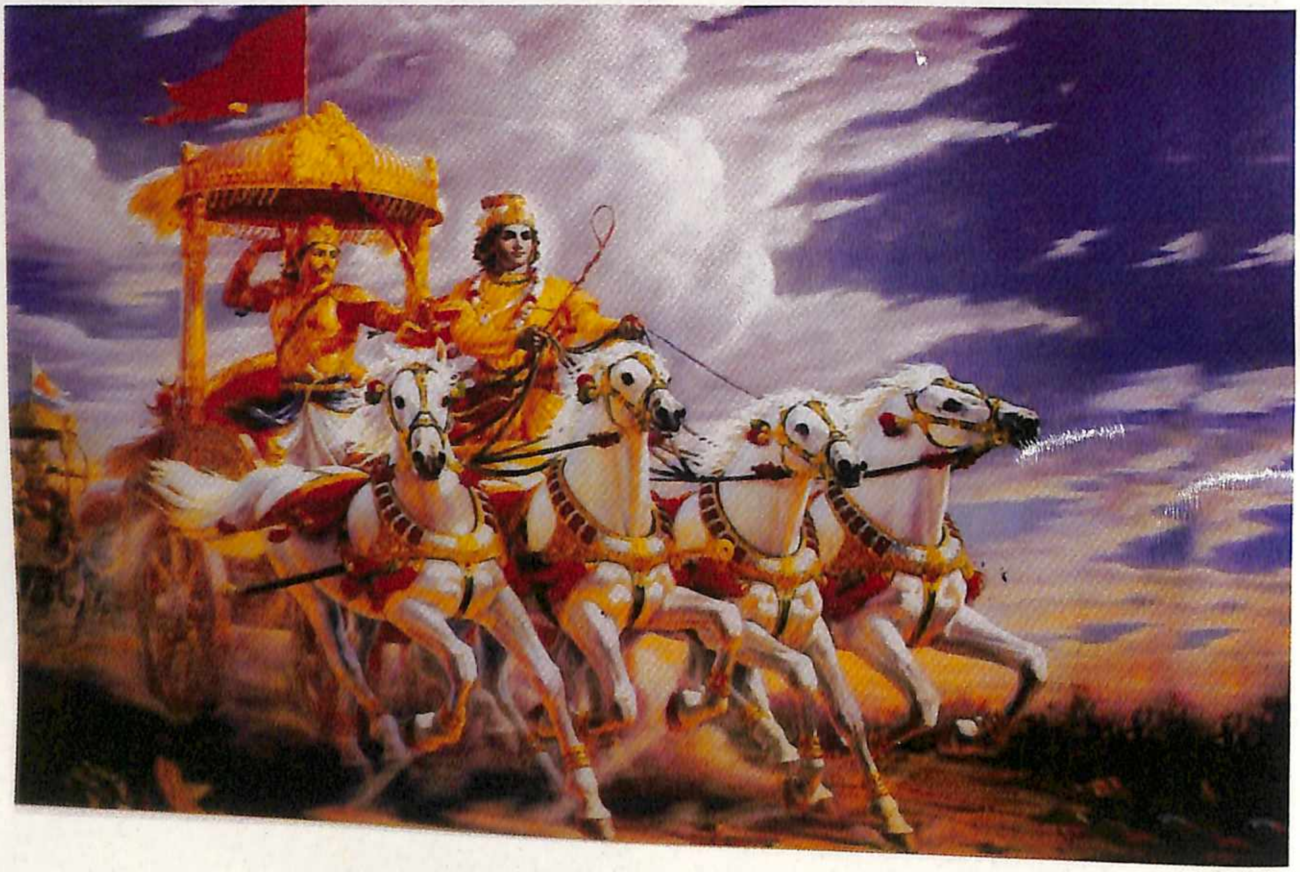

Pārthasārathi

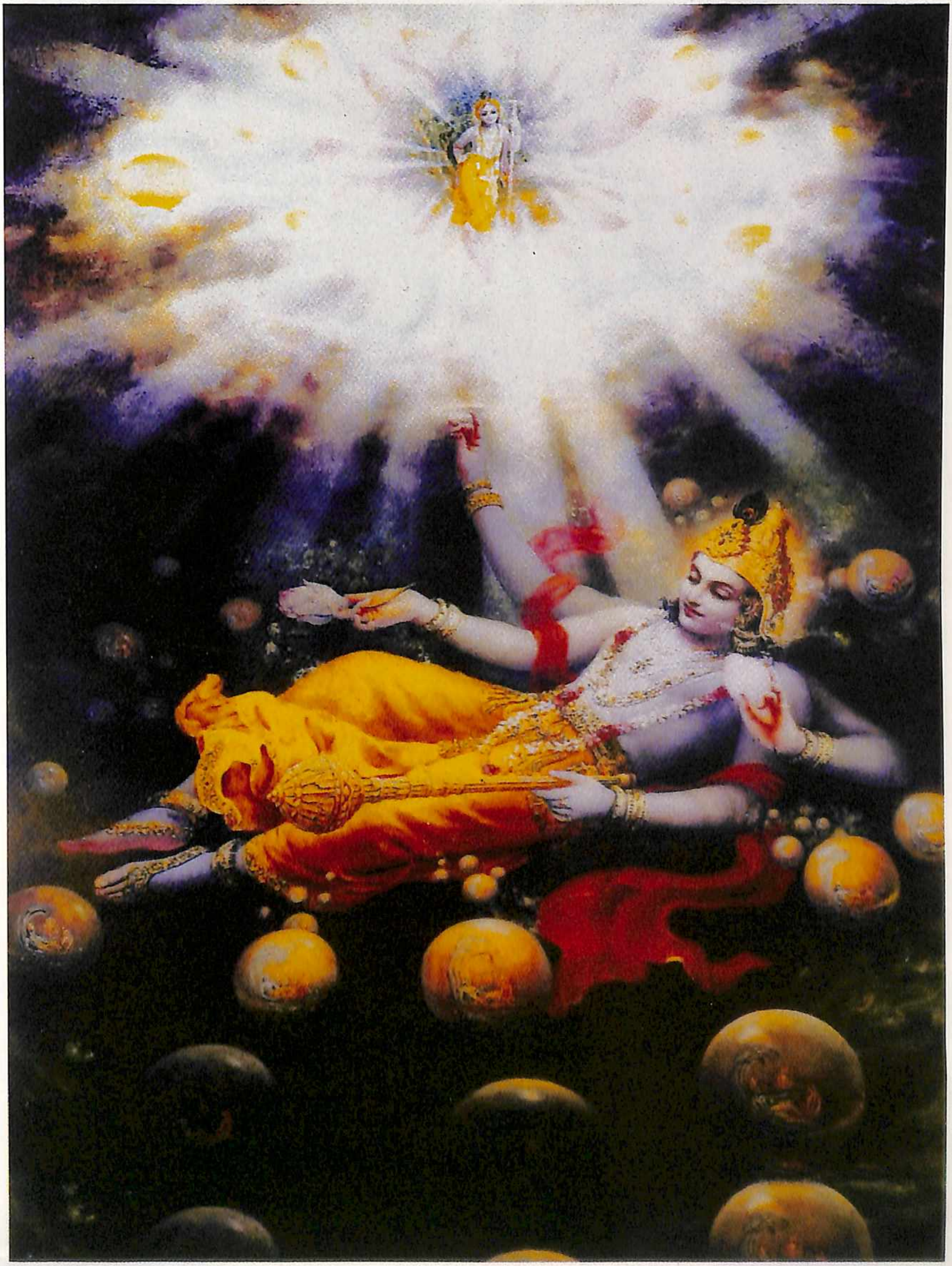

Maha Viṣṇu at the time of creation

॥ श्रीकृष्णं वन्दे जगद्गुरूम् ॥

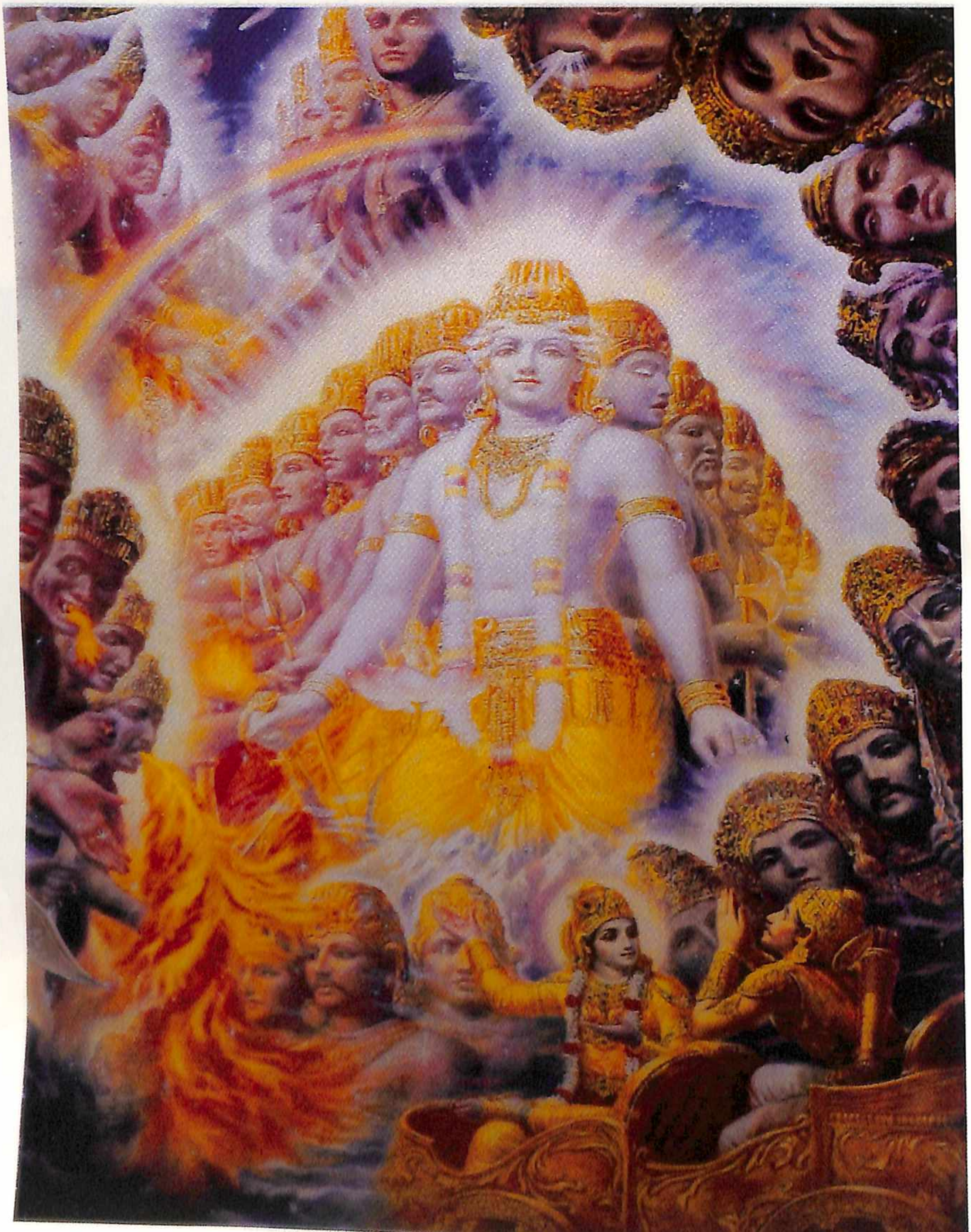

The Universal Form

Kṛṣṇa revels His to armed form to Arjuna

The armies on the battle field of Kurukṣhetra

GARBHODAKAŚĀYĪ - VIṢṆU on the bed of Ananta

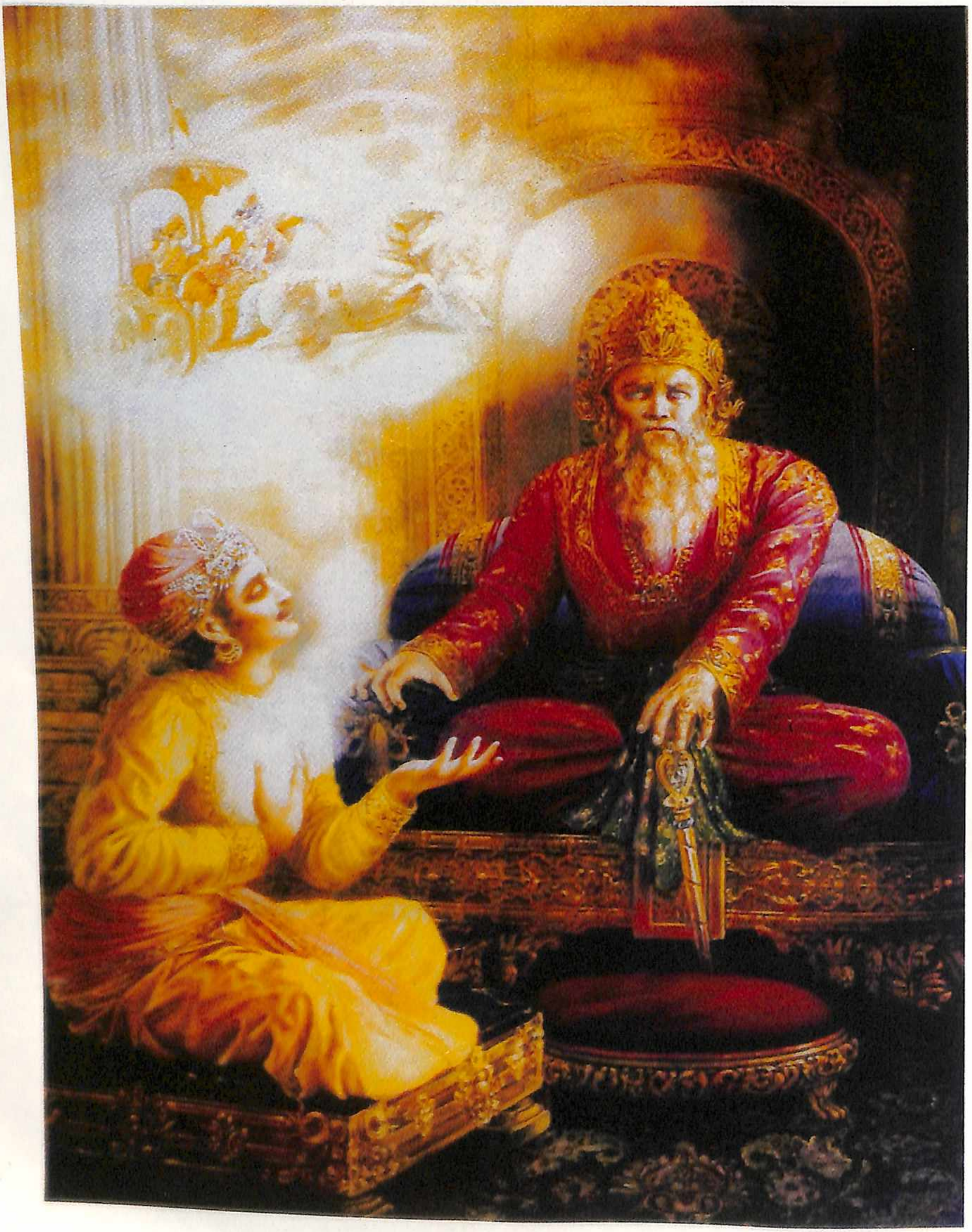

Dhṛatarāṣṭra inquires from Sañjaya

॥ ॐ श्रीकृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥

अथ श्रीमद्भगवद्गीता

अथ प्रथमोऽध्यायः

ŚRĪMAD BHAGAVAD GĪTĀ

CHAPTER I

अथ प्रथमोऽध्यायः

धृतराष्ट्र उवाच ।
धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय ।।१।।

धृतराष्ट्र ने कहा - हे सञ्जय! धर्मभूमि कुरुक्षेत्र में एकत्रित, युद्ध की इच्छावाले मेरे और पाण्डु के पुत्रों ने क्या किया ? ।।१।।

Dhṛtaraṣṭra said: Sanjaya! gathered on the sacred soil of Kurukṣetra, eager to fight, what did my children and the children of Pāṇḍu do? (1)

सञ्जय उवाच।
दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ।
आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत् ।। २।।

सञ्जय ने कहा - उस समय राजा दुर्योधन ने व्यूह रचना युक्त पाडंवों की सेना को देखकर द्रोणाचार्य के पास जाकर यह वचन कहा । ।।२।।

Sañjaya said: At that time, seeing the army of the Pāṇḍavas drawn up for battle and approaching Droṇāchārya King Duryodhana spoke these words: (2)

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ।। ३।।

हे आचार्य! आपके बुद्धिमान् शिष्य द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न द्वारा व्यूहाकार खड़ी की हुई पाण्डुपुत्रों की इस बड़ी भारी सेना को देखिये ।।३।।

Behold, master, the mighty army of the sons of Paṇḍu arrayed for battle by your talented pupil, Dhṛṣṭadyumna, son of Drupada. (3)

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥ ४॥

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ।
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुंगवः ॥ ५॥

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥ ६॥

इस सेना मे बड़े-बड़े धनुषोंवाले तथा युद्धमें भीम और अर्जुन के समान बहुत से शूरवीर सात्यकि और विराट तथा महारथी राजा द्रुपद, धृष्टकेतु और चेकितान तथा बलवान् काशिराज, पुरुजित्, कुन्तिभोज और मनुष्यों में श्रेष्ठ शैब्य, पराक्रमी युधामन्यु तथा बलवान् उत्तमौजा, सुभद्रापुत्र अभिमन्यु एवं द्रौपदीके पाँचों पुत्र -- ये सभी महारथी हैं । ॥४,५,६॥

There are in this army heroes wielding mighty bows and equal in military prowess to Bhima and Arjuna, - Sātyaki and Virāṭa and the Mahàrathi (warrior chief) Drupada; Dhṛṣṭaketu, Cekitàna and the valiant King of Kāśi, and Purujit, Kuntibhoja, and Śaibya, the best of men, and mighty Yudhamanyu, and valiant Uttamauja, Abhimanyu, the son of Subhadrā, and the five sons of Draupadi--all of them Mahārathis (warrior chiefs). (4,5,6)

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ॥ ७॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! अपने पक्षमें भी जो जो प्रधान हैं, उनको आप समझ लीजिये। आपकी जानकारी के लिये मेरी सेना के जो-जो सेनापति हैं, उनको बतलाता हूँ । ॥७॥

O best of Brahmans, know them also who are the principal warriors on our side, – the generals of my army. For your information, I mention them below:- (7)

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ॥ ८॥

आप — द्रोणाचार्य और पितामह भीष्म तथा कर्ण और संग्रामविजयी कृपाचार्य तथा वैसे ही अश्वत्थामा, विकर्ण और सोमदत्त का पुत्र भूरिश्रवा । ॥८॥

``Yourself and Bhiṣma and Karṇa and Kṛpa, who is ever were victorious in battle; and even so Aśwātthamā, Vikarṇa and Bhūriśrava (the son of Somadatta); (8)

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ९॥

और भी मेरे लिये जीवन की आशा त्याग देनेवाले बहुत-से शूरवीर अनेक प्रकारके शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित और सब-के-सब युद्धमें चतुर हैं । ॥९॥

``And there are many other heroes, equipped with various weapons and missiles, who have staked their lives for me, all skilled in warfare. (9)

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥ १०॥

भीष्मपितामह द्वारा रक्षित हमारी वह सेना सब प्रकार से अजेय है और भीम द्वारा रक्षित इन लोगों की यह सेना जीतने में सुगम है। ॥१०॥

``This army of ours, fully protected by Bhiṣma, is unconquerable; while that army of theirs, guarded in every way by Bhima, is easy to conquer. (10)

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥ ११॥

इसलिये सब मोर्चोंपर अपनी-अपनी जगह स्थित रहते हुए आपलोग सभी निःसन्देह भीष्मपितामह की ही सब ओरसे रक्षा करें । ॥११॥

``Therefore, stationed in your respective positions on all fronts, do you all guard Bhiṣma in particular on all sides. (11)

तस्य सञ्जनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शंखं दध्मौ प्रतापवान्॥ १२॥

कौरवों में वृद्ध बड़े प्रतापी पितामह भीष्म ने उस दुर्योधन के हृदयमें हर्ष उत्पन्न करते हुए उच्च स्वरसे सिंहकी दहाड़के समान गरजकर शंख बजाया । ॥१२॥

The grand old man of the Kaurava race, their glorious grand-uncle Bhiṣma, cheering up Duryodhana, roared terribly like a lion and blew his conch. (12)

ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ १३ ॥

इसके पश्चात् शंख और नगारे तथा ढोल, मृदंग और नरसिंघे आदि बाजे एक साथ ही बज उठे। उनका वह शब्द बड़ा भयंकर हुआ । ॥१३॥

Then conches, kettledrums, tabors, drums and trumpets suddenly blared forth and the noise was tumultuous. (13)

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः॥ १४ ॥

इसके अनन्तर सफेद घोड़ों से युक्त उत्तम रथमें बैठे हुए श्रीकृष्ण महाराज और अर्जुन ने भी अलौकिक शंख बजाये । ॥१४॥

Then, seated in a glorious chariot drawn by white horses, Sri Krṣṇa as well as Arjuna blew their celestial conches. (14)

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः ।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशंखं भीमकर्मा वृकोदरः॥ १५ ॥

श्रीकृष्ण महाराज ने पाञ्चजन्य नामक शंख, अर्जुन ने देवदत्त नामक शंख और भयानक कर्मवाले भीससेन ने पौण्ड्र नामक महाशङ्ख बजाया ॥१५॥

Śri Krṣṇa blew His Conch named Pānchajanya; Arjuna, his own called Devadatta; while Bhima of terrible deeds blew his mighty conch Pauṇddra. (15)

अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ १६ ॥

कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर ने अनन्तविजय नामक और नकुल तथा सहदेव ने सुघोष और मणिपुष्पक नामक शंख बजाये । ॥१६॥

King Yudhiṣthira, son of Kunti, blew his conch Anantavijaya, while Nakula and Sahadeva blew theirs, known as Sughoṣa and Maṇipuṣpaka respectively. (16)

काश्यश्च परमेष्वास: शिखण्डी च महारथ: ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजित: ।। १७।।
द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वश: पृथिवीपते।
सौभद्रश्च महाबाहु: शङ्खान्दध्मु: पृथक्पृथक्।। १८।।

श्रेष्ठ धनुषवाले काशिराज और महारथी शिखण्डी एवं धृष्टद्युम्न तथा राजा विराट और अजेय सात्यकि, राजा द्रुपद एवं द्रौपदी के पाँचो पुत्र और बड़ी भुजावाले सुभद्रापुत्र अभिमन्यु-इन सभीने, हे राजन् ! (सब ओरसे) अलग-अलग शङ्ख बजाये । ।।१७-१८।।

And the excellent archer, the King of Kaṣi, and Śikhandi the Mahârathi (great car-warrior), Dhṛṣṭadyumna and Virāta, and invincible Satyaki, Drupada as well as the five sons of Draupadi, and the mighty-armed Abhimanyu, son of Subhadrā, all of them, O lord of the earth, severally blew their respective conches from all sides. (17-18)

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ।। १९।।

और उस भयानक शब्दने आकाश और पृथ्वीको भी गुँजाते हुए धार्तराष्ट्र पुत्रों के हृदय विदीर्ण कर दिये । ।।१९।।

And the terrible sound, echoing through heaven and earth, rent the hearts of Dhṛtaraṣṭra's sons. (19)

अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान्कपिध्वज:।
प्रवृते शस्त्रसंपाते धनुरुद्यम्य पाण्डव:।। २०।।
हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते।
अर्जुन उवाच ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत।। २१।।

हे राजन् ! इसके उपरांत कपिध्वज अर्जुन ने मोर्चा बाँधकर डटे हुए धृतराष्ट्र-सम्बन्धियों को देखकर उस शस्त्र चलने की तैयारी के समय धनुष उठाकर हृषीकेश श्रीकृष्ण महाराज से यह वचन कहा - हे अच्युत! मेरे रथको दोनों सेनाओं के बीचमें खड़ा कीजिये।।।२०-२१।।

Now, O lord of the earth, seeing your sons arrayed against him and when missiles were ready to be hurled, Arjun, son of Pāṇḍu, took up his bow and then addressed the following words to Śri Kṛṣṇa; ``Kṛṣṇa, place my chariot between the two armies. (20-21)

यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान्।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे।। २२।।

और जबतक कि मैं युद्धक्षेत्र में डटे हुए युद्धके अभिलाषी इन विपक्षी योद्धाओं को भली प्रकार देख लूँ कि इस युद्धरूप व्यापार में मुझे किन-किन के साथ युद्ध करना योग्य है । ।।२२।।

``And keep it there till I have carefully observed these warriors drawn up for battle, and have seen with whom I have to engage in this fight. (22)

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः ।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ।। २३।।

दुर्बुद्धि दुर्योधन का युद्धमें हित चाहनेवाले जो-जो ये राजालोग इस सेनामें आये हैं, इन युद्ध करने वालोंको मै देखूँगा । ।।२३।।

``I shall scan the well-wishers in this war of evil-minded Duryodhana, whoever have assembled on this side and are ready for the fight." (23)

सञ्जय उवाच ।
एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ।। २४।।
भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् ।
उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति ।। २५।।

सञ्जय बोले- हे धृतराष्ट्र ! अर्जुन द्वारा इस प्रकार कहे हुए महाराज श्रीकृष्णचन्द्र ने दोनों सेनाओं के बीचमें भीष्म और द्रोणाचार्य के सामने तथा सम्पूर्ण राजाओं के सामने उत्तम रथ को खड़ा करके इस प्रकार कहा कि हे पार्थ! युद्ध के लिये जुटे हुए इन कौरवों को देख । ।।२४-२५।।

Sanjaya said: O king, thus addressed by Arjuna, Śri Kṛṣṇa placed the magnificent chariot between the two armies in front of Bhisṃa, Droṇa and all the kings and said, "Arjuna, behold these Kauravas assembled here." (24-25)

तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थः पितॄनथ पितामहान् ।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ।। २६।।
श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ।

इसके पश्चात पृथापुत्र अर्जुन ने उन दोनों ही सेनाओं में स्थित ताऊ-चाचाओं को, दादाओं-परदादाओं को, गुरुओं को, मामाओं को, भाइयों को, पुत्रों को, पौत्रों को तथा मित्रों को, ससुरों को और सुहृदों को भी देखा । ।।२६।।

Now Arjuna saw stationed there in both the armies his uncles, grand-uncles and teachers, even great grand-uncles, maternal uncles, brothers and cousins, sons and nephews, and grand-nephews, even so friends, fathers-in-law and well-wishers as well. (26 & first half of 27)

तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान्॥ २७॥
कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ।

उन उपस्थित सम्पूर्ण बन्धुओं को देखकर वे कुन्तीपुत्र अर्जुन अत्यन्त करुणा से युक्त होकर शोक करते हुए यह वचन कहे -

॥२७ वें का उत्तरार्ध और २८ वें का पूर्वार्ध॥

Seeing all those relations present there, Arjuna was filled with deep compassion, and uttered these words in sadness.

(Second half of 27 and first half of 28)

अर्जुन उवाच ।
दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥ २८॥
सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥ २९॥

अर्जुन बोले-हे कृष्ण ! युद्धक्षेत्र में डटे हुए युद्धके अभिलाषी इस स्वजन समुदाय को देखकर मेरे अंग शिथिल हुए जा रहे हैं और मुख सूखा जा रहा है तथा मेरे शरीर में कम्प एवं रोमांच हो रहा है

॥ २८ वेंका उत्तरार्ध और २९॥

Arjuna said: Kṛṣṇa at the sight of these kinsmen arrayed for battle my limbs give way, and my mouth is parching; nay, a shiver runs through my body and hair stands upright.(2nd half of 28 and 29)

गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥ ३०॥

हाथ से गाण्डीव धनुष गिर रहा है और त्वचा भी बहुत जल रही है तथा मेरा मन भ्रमित-सा हो रहा है, इसलिये मैं खड़ा रहने को भी समर्थ नहीं हूँ ।

॥३०॥

The bow, Gaṇḍiva, slips from my hand and my skin too burns all over; my brain is whirling, as it were, and I can stand no longer. (30)

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥ ३१॥

हे केशव ! मैं लक्षणों को भी विपरीत ही देख रहा हूँ तथा युद्ध में स्वजन-समुदाय को मारकर कल्याण भी नहीं देखता । ॥३१॥

And, Keśava, I see such omens of evil, nor do I see any good in killing my kinsmen in battle. (31)

न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा॥ ३२॥

हे कृष्ण ! मैं न तो विजय चाहता हूँ और न राज्य तथा सुखों को ही। हे गोविन्द ! हमें ऐसे राज्य से क्या प्रयोजन है अथवा ऐसे भोगों से और जीवन से भी क्या लाभ है? ॥३२॥

Kṛṣṇa, I do not covet victory; nor kingdom, nor pleasures, Govinda, of what use will kingdom, or luxuries, or even life be to us! (32)

येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च॥ ३३॥
आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा॥ ३४॥

हमें जिनके लिये राज्य, भोग और सुखादि अभीष्ट हैं वे ही ये सब धन और जीवन की आशा को त्यागकर युद्ध में खड़े हैं। गुरुजन, ताऊ-चाचे, लड़के और उसी प्रकार दादे, मामे, ससुर, पौत्र, साले तथा और भी सम्बन्धी लोग हैं । ॥३३, ३४॥

Those very persons for whose sake we covet the throne, luxuries and pleasures, – teachers, uncles, sons and nephews and even so grand-uncles and great grand-uncles, maternal uncles, fathers-in-law, grand-nephews, brothers-in-law and other relations, are here arrayed on the battle field risking their lives and wealth. (33, 34)

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ॥ ३५॥

हे मधुसूदन! मुझे मारने पर भी अथवा तीनों लोकों के राज्य के लिये भी मैं इन सबको मारना नहीं चाहता, फिर पृथ्वी के लिये तो कहना ही क्या है । ॥३५॥

O Slayer of Madhu, I do not want to kill them, though they should slay me, even for the throne of the three worlds; how much the less for earthly lordship ! (35)

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन ।
पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ॥ ३६॥

हे जनार्दन ! धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारकर हमें क्या प्रसन्नता होगी? इन आततायियों को मारकर तो हमें पाप ही लगेगा। ॥३६॥

Kṛṣṇa, how can we hope to be happy slaying the sons of Dhṛtarāṣṭra; killing these desperadoes sin will surely take hold of us. (36)

तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान्स्वबान्धवान् ।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥ ३७॥

अतएव हे माधव ! अपने ही बान्धव धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारने के लिये हम योग्य नहीं हैं। क्योंकि अपने ही कुटुम्ब को मारकर हम कैसे सुखी होंगे? ॥३७॥

Therefore, Kṛṣṇa, it does not behove us to kill our relations, the sons of Dhṛtarāṣṭra. For how can we be happy after killing our own kinsmen? (37)

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम्॥ ३८॥
कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम् ।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥ ३९॥

यद्यपि लोभसे भ्रष्टचित्त हुए ये लोग कुलके नाशसे उत्पन्न दोष को और मित्रों से विरोध करने में पाप को नहीं देखते, तो भी हे जनार्दन! कुल के नाश से उत्पन्न दोष को जानने वाले हम लोगों को इस पाप से हटने के लिये क्यों नहीं विचार करना चाहिये । ॥३८, ३९॥

Even if these people, with minds blinded by greed, perceive no evil in destroying their own race and no sin in treason to friends, why should not we, O Kṛṣṇa, who see clearly the sin accruing from the destruction of one's family, think of turning away from this crime? (38-39)

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः ।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥ ४०॥

कुल के नाश से सनातन कुल-धर्म नष्ट हो जाते हैं, धर्म के नाश हो जाने पर सम्पूर्ण कुल में पाप भी बहुत फैल जाता है । ॥४०॥

Age-long family traditions disappear with the destruction of a family; and virtue having been lost, vice takes hold of the entire race. (40)

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः॥ ४१॥

हे कृष्ण! पाप के अधिक बढ़ जाने से कुल की स्त्रियाँ अत्यन्त दूषित हो जाती हैं और हे वार्ष्णेय! स्त्रियोंके दूषित हो जानेपर वर्णसंकर उत्पन्न होता है। ॥४१॥

With the preponderance of vice, Kṛṣṇa, the women of the family become corrupt; and with the corruption of women, O descendant of Vṛṣṇi, there ensues an intermixture of castes. (41)

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः॥ ४२ ॥

वर्णसंकर कुलघातियों को और कुल को नरक में ले जानेके लिये ही होता है। लुप्त हुई पिण्ड और जल की क्रियावाले अर्थात् श्राद्ध और तर्पण से वंचित इनके पितर लोग भी अधोगति को प्राप्त होते हैं । ॥४२॥

Admixture of blood damns the destroyers of the race as well as the race itself. Deprived of the offerings of rice and water (Śrāddha, Tarpaṇa, etc.), the manes of their race also fall. (42)

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः॥ ४३॥

इन वर्णसंकर कारक दोषों से कुलघातियों के सनातन कुल-धर्म और जाति-धर्म नष्ट हो जाते हैं। ॥४३॥

Through these evils bringing about an intermixture of castes, the age long caste-traditions and family customs of the killers of kinsmen get extinct. (43)

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन।
नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम॥ ४४॥

हे जनार्दन ! जिनका कुल-धर्म नष्ट हो गया है, ऐसे मनुष्यों का अनिश्चित कालतक नरकमें वास होता है, ऐसा हम सुनते आये हैं। ॥४४॥

Kṛṣṇa, we hear that men who have lost their family traditions dwell in hell for an indefinite period of time. (44)

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः॥ ४५॥

अहो ! शोक है कि हम लोग बुद्धिमान् होकर भी महान् पाप करने को तैयार हो गये हैं, जो राज्य और सुख के लोभ से स्वजनों को मारने के लिये उद्यत हो गये हैं। ॥४५॥

Oh what a pity! Though possessed of intelligence we have set our mind on the commission of a great sin that due to lust for throne and enjoyment we are intent in killing our own kinsmen. (45)

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत्॥ ४६॥

यदि मुझ शस्त्ररहित एवं सामना न करनेवाले को शस्त्र हाथ में लिये हुए धृतराष्ट्र के पुत्र रण में मार डालें तो वह मारना भी मेरे लिये अधिक कल्याणकारक होगा। ॥४६॥

It would be better for me if the sons of Dhṛtarāṣṭra armed with weapons, killed me in battle while I was unarmed and unresisting. (46)

सञ्जय उवाच ।
एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत्।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥ ४७॥

संजय बोले - रणभूमि में शोक से उद्विग्न मन वाला अर्जुन इस प्रकार कहकर, बाणसहित धनुष को त्यागकर रथके पिछले भाग में बैठ गया।।४७।।

Sanjaya said : Arjuna, whose mind was agitated by grief on the battle-field, having spoken thus, and having thrown aside his bow and arrows, sank into the hinder part of his chariot. (47)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादेऽर्जुनविषादयोगो नाम
प्रथमोऽध्याय : ॥ १ ॥

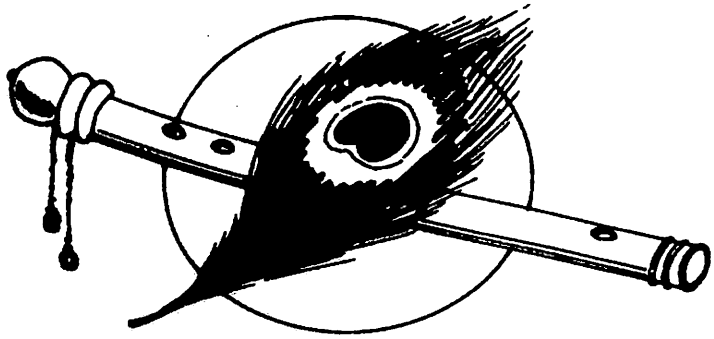

॥ ॐ श्रीकृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥

अथ श्रीमद्भगवद्गीता

अथ द्वितीयोऽध्यायः

ŚRĪMAD BHAGAVAD GĪTĀ

CHAPTER II

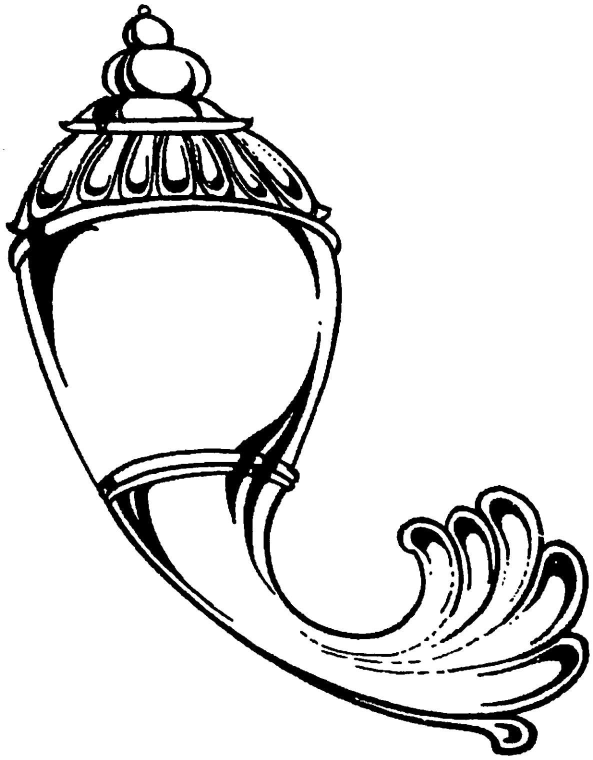

अथ द्वितीयोऽध्यायः

सञ्जय उवाच ।
तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः॥ १॥

सञ्जय बोले--उस प्रकार करुणा से व्याप्त और आँसुओं से पूर्ण तथा व्याकुल नेत्रों वाले शोकयुक्त उस अर्जुन के प्रति भगवान् मधुसूदन ने यह वचन कहा । ॥१॥

Sanjaya said: Śri Kṛṣṇa then addressed the following words to Arjuna, who was as mentioned before overwhelmed with pity, whose eyes were filled with tears and agitated, and who was full of sorrow. (1)

श्रीभगवानुवाच ।
कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥ २॥

श्रीभगवान् बोले - हे अर्जुन ! तुझे इस असमय में यह मोह किस हेतुसे प्राप्त हुआ? क्योंकि न तो यह श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा आचरित है, न स्वर्गको देनेवाला है और न कीर्ति को करने वाला ही है । ॥२॥

Sri Bhagavān said: Arjuna, how has this infatuation overtaken you at this odd hour? It is shunned by noble souls; neither will it bring heaven, nor fame, to you. (2)

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप॥ ३॥

इसलिये हे अर्जुन! नपुंसकता को मत प्राप्त हो, तुझ में यह उचित नहीं जान पड़ती। हे परन्तप ! हृदय की तुच्छ दुर्बलता को त्यागकर युद्ध के लिये खड़ा होजा । ॥३॥

Yield not to unmanliness, Arjuna; ill does it become you. Shaking off this paltry faint-heartedness stand up. O scorcher of enemies. (3)

अर्जुन उवाच ।
कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥ ४॥

अर्जुन बोले - हे मधुसूदन ! मै रणभूमिमें किस प्रकार बाणोंसे भीष्मपितामह और द्रोणाचार्य के विरुद्ध लड़ूँगा? क्योंकि हे अरिसूदन ! वे दोनों ही पूजनीय हैं । ॥४॥

Arjuna said: How Kṛṣṇa, shall I fight Bhiṣma and Droṇa with arrows on the battle-field ? They are worthy of deepest reverence, O destroyer of foes. (4)

गुरूनहत्वा हि महानुभावान्
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव
भुञ्जीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान्॥ ५॥

इसलिये, इन महानुभाव गुरुजनों को न मारकर मैं इस लोक में भिक्षा का अन्न भी खाना कल्याण कारक समझता हूँ। क्योकि गुरुजनों को मारकर भी इस लोक में रुधिर से सने हुए अर्थ और काम रूप भोगों को हो तो भोगूँगा। ॥५॥

It is better to live on alms in this world without slaying these noble elders, because even after killing them we shall after all enjoy only bloodstained pleasures in the form of wealth and sense-enjoyments. (5)

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम-
स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ।। ६।।

और हम लोग यह भी नहीं जानते कि हमारे लिये युद्ध करना और न करना- इन दोनोंमें से कौन-सा श्रेष्ठ है, अथवा यह भी नहीं जानते कि उन्हें हम जीतेंगे या हमको वे जीतेंगे, और जिनको मारकर हम जीना भी नहीं चाहते,वे ही हमारे आत्मीय धृतराष्ट्र के पुत्र हमारे मुकाबले में खड़े हैं। ।।६।।

We do not even know which is preferable for us -- to fight or not to fight; nor do we know whether we shall win or whether they will conquer us. Those very sons of Dhṛtarāṣṭra, killing whom we do not even wish to live, stand in the enemy ranks. (6)

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ।। ७।।

इसलिये-कायरतारूप दोषसे उपहत हुए स्वभाव वाला तथा धर्म के विषयमें मोहितचित्त हुआ मैं आपसे पूछता हूँ कि जो साधन निश्चित कल्याणकारक हो, वह मेरे लिये कहिये, क्योंकि मैं आपका शिष्य हूँ इसलिये आपके शरण हुए मुझको शिक्षा दीजिये। ।।७।।

With my very being tainted by the vice of faint-heartedness and my mind puzzled with regard to duty. I am asking You. Tell me that which is decidedly good; I am your disciple. Pray instruct me, who have put myself into your hands. (7)

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्–
यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् ।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥ ८॥

क्योंकि भूमि में निष्कण्टक, धन-धान्यसम्पन्न राज्य को और देवताओं के स्वामीपने को प्राप्त होकर भी मैं उस उपाय को नहीं देखता हूँ, जो मेरी इन्द्रियों के सुखाने वाले शोक को दूर कर सके । ॥८॥

For even on obtaining undisputed sovereignty and an affluent kingdom on this earth and lordship over the gods, I do not see any means that can drive away the grief which is drying up my senses. (8)

सञ्जय उवाच ।
एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतप।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥९॥

सञ्जय बोले -- हे राजन् ! निद्रा को जीतनेवाले अर्जुन अन्तर्यामी श्रीकृष्ण महाराजके प्रति इस प्रकार कहकर फिर श्रीगोविन्द भगवान् से 'युद्ध नहीं करुँगा' यह स्पष्ट कहकर चुप हो गये । ॥९॥

Sanjaya said: O king, having thus spoken to Śri Kṛṣṇa, Arjuna again said to Him, ``I will not fight," and became silent. (9)

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः॥ १०॥

हे भरतवंशी धृतराष्ट्र ! अन्तर्यामी श्रीकृष्ण महाराज दोनों सेनाओंके बीचमें शोक करते हुए उस अर्जुनको हँसते हुए से यह वचन बाले।॥१०॥

Then, O Dhṛtarāṣṭra, Śri Kṛṣṇa, as if smiling addressed the following words to sorrowing Arjuna, in the midst of the two armies. (10)

श्रीभगवानुवाच ।
अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥ ११॥

श्रीभगवान् बोले-हे अर्जुन ! तू न शोक करनेयोग्य मनुष्यों के लिये शोक करता है और पण्डितों के से वचनों को कहता है, परन्तु जिनके प्राण चले गये हैं, उनके लिये और जिनके प्राण नहीं गये हैं, उनके लिये भी पण्डितजन शोक नहीं करते । ॥११॥

Śri Bhagavān said: Arjuna, you grieve over those who should not be grieved for and yet speak like the learned; wise men do not sorrow over the dead or the living. (11)

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥ १२॥

न तो ऐसा ही है कि मैं किसी काल में नहीं था, तू नहीं था अथवा ये राजलोग नहीं थे, और न ऐसा ही है कि इससे आगे हम सब नहीं रहेंगे । ॥१२॥

In fact, there was never a time when I was not, or when you or these kings were not. Nor is it a fact that hereafter we shall all cease to be. (12)

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥ १३॥

जैसे जीवात्मा की इस देह में बालकपन, जवानी और वृद्धावस्था होती है, वैसे ही अन्य शरीर की प्राप्ति होती है, उस विषयमें धीर पुरुष मोहित नहीं होता। ॥१३॥

Just as boyhood, youth and old age are attributed to the soul through this body, even so it attains another body. The wise man does not get deluded about this. (13)

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत॥ १४॥

हे कुन्तीपुत्र! सर्दी, गर्मी और सुख-दुःख को देनेवाले इन्द्रिय और विषयों के संयोग तो उत्पत्ति-विनाशशील और अनित्य हैं, इसलिये हे भारत! उनको तू सहन कर। ॥१४॥

O son of Kunti, the contacts between the senses and their objects, which give rise to the feelings of heat and cold, pleasure and pain etc., are transitory and fleeting; therefore, Arjuna, ignore them (14)

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते॥ १५॥

क्योंकि हे पुरुषश्रेष्ठ! दुःख-सुख को समान समझनेवाले जिस धीर पुरुषको ये इन्द्रिय और विषयों के संयोग व्याकुल नहीं करते, वह मोक्षके योग्य होता है। ॥१५॥

Arjuna, the wise man to whom pain and pleasure are alike, and who is not tormented by these contacts, becomes eligible for immortality. (15)

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥१६॥

असत् वस्तु की तो सत्ता नहीं है और सत् का अभाव नहीं है। इस प्रकार इन दोनों का ही तत्व तत्त्वज्ञानी पुरुषों द्वारा देखा गया है। ॥१६॥

The unreal has no existence, and the real never ceases to be; the reality of both has thus been perceived by the seers of truth. (16)

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥ १७॥

नाशरहित तो तू उसको जान, जिससे यह सम्पूर्ण - दृश्यवर्ग व्याप्त है। इस अविनाशी का विनाश करने में कोई भी समर्थ नहीं है । ॥१७॥

Know that alone to be imperishable, which pervades this universe; for no one has power to destroy this indestructible substance. (17)

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत॥ १८॥

इस नाशरहित, अप्रमेय, नित्यस्वरुप जीवात्मा के ये सब शरीर नाशवान् कहे गये हैं। इसलिये हे भरतवंशी अर्जुन ! तू युद्ध कर। ॥१८॥

All these bodies pertaining to the imperishable, indefinable and eternal soul are spoken of as perishable; therefore, Arjuna, fight. (18)

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते॥ १९॥

जो इस आत्मा को मारनेवाला समझता है तथा जो इसको मरा मानता है, वे दोनों ही नहीं जानते; क्योंकि यह आत्मा बास्तव में न तो किसीको मारता है और न किसी के द्वारा मारा जाता है। ॥१९॥

They are both ignorant, he who knows the soul to be capable to killing and he who takes it as killed; for verily the soul neither kills, nor is killed. (19)

न जायते म्रियते वा कदाचि -
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ २०॥

यह आत्मा किसी काल में भी न तो जन्मता है और न मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होनेवाला ही है; क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है; शरीर के मारे जानेपर भी यह नहीं मारा जाता॥२०॥

The soul is never born nor dies; nor does it become only after being born. For it is unborn, eternal, everlasting and ancient; even though the body is slain, the soul is not.(20)

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ॥ २१॥

हे पृथापुत्र अर्जुन! जो पुरुष इस आत्मा को नाशरहित, नित्य, अजन्मा और अव्यय जानता है, वह पुरुष कैसे किसको मरवाता है और कैसे किसको मारता है? ॥२१॥

Arjuna, the man who knows this soul to be imperishable, eternal and free from birth and decay, - how and whom will he cause to be killed, how and whom will he kill? (21)

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा -
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥ २२॥

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्यागकर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त होता है । ॥२२॥

As a man shedding worn-out garments, takes other new ones, likewise the embodied soul, casting off worn-out bodies, enters into others which are new. (22)

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥ २३॥

इस आत्मा को शस्त्र नहीं काट सकते, इसको आग नही जला सकती, इसको जल नहीं गला सकता और वायु नहीं सुखा सकता । ॥२३॥

Weapons cannot cut it nor can fire burn it; water cannot wet it nor can wind dry it. (23)

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥ २४॥

क्योंकि यह आत्मा अच्छेद्य है; यह आत्मा अदाह्य अक्लेद्य और निःसन्देह अशोष्य है। तथा यह आत्मा नित्य, सर्वव्यापी, अचल, स्थिर रहनेवाला और सनातन है । ॥२४॥

For this soul is incapable of being cut; it is proof against fire, impervious to water and undriable as well. This soul is eternal, omnipresent, immovable, constant and everlasting. (24)

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥ २५॥

यह आत्मा अव्यक्त है, यह आत्मा अचिन्त्य है और यह आत्मा विकाररहित कहा जाता है। इससे हे अर्जुन! इस आत्माको उपर्युक्त प्रकारसे जानकर तू शोक करने को योग्य नहीं है अर्थात् तुझे शोक करना उचित नहीं है । ॥२५॥

This soul is unmanifest; it is unthinkable; and it is spoken of as immutable. Therefore, knowing this as such, you should not grieve. (25)

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि ॥ २६॥

किन्तु यदि तू इस आत्मा को सदा जन्मनेवाला तथा सदा मरनेवाला मानता है, तो भी हे महाबाहो! तू इस प्रकार शोक करने को योग्य नही है । ॥२६॥

And, Arjuna, if you should suppose this soul to be subject to constant birth and death, even then you should not grieve like this. (26)

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ २७॥

क्योंकि इस मान्यता के अनुसार जन्मे हुए की मृत्यु निश्चित है और मरे हुए का जन्म निश्चित है। इससे भी इस बिना उपायवाले विषयमें तू शोक करने को योग्य नहीं है। ॥२७॥

For in that case death is certain for the born, and rebirth is inevitable for the dead. You should not, therefore, grieve over the inevitable. (27)

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ २८॥

हे अर्जुन ! सम्पूर्ण प्राणी जन्म से पहले अप्रकट थे और मरने के बाद भी अप्रकट हो जानेवाले हैं, केवल बीचमें ही प्रकट हैं; फिर ऐसी स्थिति में क्या शोक करना है? ॥२८॥

Arjuna, before birth beings are not manifest to our human senses; at death they return to the unmanifest again. They are manifest only in the interim between birth and death. What occasion, then, for lamentation? (28)

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन-
माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः श्रृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥ २९॥

कोई एक महापुरुष ही इस आत्मा को आश्चर्य की भाँति देखता है और वैसे ही दूसरा कोई महापुरुष ही इसके तत्त्वका आश्चर्य की भाँति वर्णन करता है तथा दूसरा कोई अधिकारी पुरुष ही इसे आश्चर्य की भाँति सुनता है और कोई-कोई तो सुनकर भी इसको नहीं जानता । ॥२९॥

Hardly anyone perceives this soul as marvellous, scarce another likewise speaks thereof as marvellous, and scarce another hears of it as marvellous, while there are some who know it not even on hearing of it. (29)

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि॥ ३०॥

हे अर्जुन ! यह आत्मा सब के शरीरों में सदा ही अवध्य है। इस कारण सम्पूर्ण प्राणियों के लिये तू शोक करनेके योग्य नहीं है । ॥३०॥

Arjuna, this soul dwelling in the bodies of all can never be slain; therefore, you should not mourn for anyone. (30)

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते॥३१॥

तथा अपने धर्म को देखकर भी तू भय करने योग्य नहीं है अर्थात तुझे भय नहीं करना चाहिये। क्योंकि क्षत्रिय के लिये धर्मयुक्त युद्धसे बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारी कर्तव्य नहीं है। ॥३१॥

Besides, considering your own duty too you should not waver, for there is nothing more welcome for a man of the warrior class than a righteous war. (31)

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम॥ ३२॥

हे पार्थ ! अपने-आप प्राप्त हुए और खुले हुए स्वर्ग के द्वार रूप इस प्रकार के युद्ध को भाग्यवान् क्षत्रिय लोग ही पाते हैं। ॥३२॥

Arjuna, happy are the Kṣatriyas who get such an unsolicited opportunity for war; which opens the door to heaven. (32)

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं सङ्ग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि॥३३॥

किन्तु यदि तू इस धर्मयुक्त युद्ध को नही करेगा तो स्वधर्म और कीर्ति को खो कर पाप को प्राप्त होगा। ॥३३॥

Now, If you refuse to fight this righteous war, then, shirking your duty and losing your reputation, you will incur sin. (33)

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम् ।
संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥३४॥

तथा सब लोग तेरी बहुत काल तक रहनेवाली अपकीर्ति का भी कथन करेंगे और माननीय पुरुष के लिये अपकीर्ति मरणसे भी बढ़कर है॥३४॥

Nay, people will also pour undying infamy on you; and infamy brought on a man enjoying popular esteem is worse than death. (34)

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः ।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥ ३५॥

और जिनकी दृष्टि में तू पहले बहुत सम्मानित होकर अब लघुता को प्राप्त होगा, वे महारथी लोग तुझे भयके कारण युद्धसे हटा हुआ मानेंगे । ॥३५॥

And the warrior-chiefs who thought highly of you, will now despise you, thinking that it was fear which drove you from battle. (35)

अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यन्ति तवाहिताः ।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥३६॥

तेरे वैरीलोग तेरे सामर्थ्य की निन्दा करते हुए तुझे बहुत-से न कहने योग्य वचन भी कहेंगे, फिर उससे अधिक दुःख और क्या होगा?॥३६॥

And your enemies, disparaging your might, will speak many unbecoming words; what can be more distressing than this? (36)

हतो वा प्राप्स्यसिस्वर्गं जित्वावाभोक्ष्यसेमहीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥३७॥

या तो तू युध्द में मारा जाकर स्वर्ग को प्राप्त होगा अथवा संग्राम में जीतकर पृथ्वी का राज्य भोगेगा । इस कारण हे अर्जुन! तू युध्द के लिए निश्चय करके खडा हो जा। ॥३७॥

Die, and you will win heaven; conquer, and you enjoy sovereignty of the earth; therefore, stand up, Arjuna, determined to fight. (37)

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥ ३८॥

जय-पराजय, लाभ-हानि और सुख-दुःख को समान समझकर, उसके बाद युद्ध के लिये तैयार हो जा, इस प्रकार युद्ध करने से तू पाप को नहीं प्राप्त होगा । (३८)

Treating alike victory and defeat, gain and loss, pleasure and pain, get ready for the fight, then; fighting thus you will not incure sin. (38)

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां श्रृणु ।
बुद्धया युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ॥ ३९॥

हे पार्थ ! यह बुद्धि तेरे लिये ज्ञानयोग के विषयमें कही गयी और अब तू इसको कर्मयोग के विषयमें सुन, जिस बुद्धि से युक्त हुआ तू कर्मो के बन्धन को भलीभाँति त्याग देगा यानी सर्वथा नष्ट कर डालेगा । ॥३९॥

Arjuna, this attitude of mind has been presented to you from the point of view of Jnānayoga; now hear the same as presented from the standpoint of karmayoga (the Yoga of selfless action). Equipped with this attitude of mind, you will be able to throw off completely the shackles of Karma. (39)

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥ ४० ॥

इस कर्मयोग मे आरम्भ का अर्थात् बीज का नाश नहीं है और उल्टा फलरूप दोष भी नहीं हैं बल्कि इस कर्मयोगरूप धर्मका थोड़ा-सा भी साधन जन्म-मृत्युरूप महान् भय से रक्षा कर लेता है । ॥४०॥

In this path (of dis-interested-action) there is no loss of effort, nor is there fear of contrary result, even a litttle practice of this discipline saves one from the terrible fear of birth and death. (40)

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन ।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥ ४१ ॥

हे अर्जुन ! इस कर्मयोग में निश्चयात्मिका बुद्धि एक ही होती है, किन्तु अस्थिर विचारवाले विवेकहीन सकाम मनुष्यों की बुद्धियाँ निश्चय ही बहुत भेदोंवाली और अनन्त होती हैं । ॥४१॥

Arjuna, in this Yoga (of dis-interested-action) the intellect is determinate and directed singly towards one ideal; whereas the intellect of the undecided (ignorant men moved by desires) wanders in all directions, after innumerable aims. (41)

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः ।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः।। ४२।।
कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ।। ४३।।
भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते।। ४४।।

हें अर्जुन! जो भोगोंमें तन्मय हो रहे हैं, जो कर्मफल के प्रशंसक वेदवाक्योंमें ही प्रीति रखते हैं, जिनकी बुद्धिमें स्वर्ग ही परम प्राप्य वस्तु है और जो स्वर्गसे बढकर दूसरी कोई वस्तु ही नहीं है-ऐसा कहनेवाले हैं, वे अविवेकीजन इस प्रकार की जिस पुष्पित यानी दिखाऊ शोभायुक्त वाणीको कहा करते हैं जो कि जन्मरूप कर्मफल देनेवाली एवं भोग तथा ऐश्वर्य की प्राप्तिके लिये नाना प्रकार की बहुत-सी क्रियाओंका वर्णन करनेवाली है, उस वाणीद्वारा जिनका चित्त हर लिया गया है, जो भोग और ऐश्वर्यमें अत्यन्त आसक्त हैं, उन पुरुषोंकी परमात्मा में निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती । ।।४२,४३,४४।।

Arjuna, those who are full of worldly desires and devoted to the letter of the Vedas, who look upon heaven, as the supreme goal and argue that there is nothing beyond heaven are unwise. They utter flowery speech recommending many rituals of various kinds for the attainment of pleasure and power with rebirth as their fruit. Those whose minds are carried away by such words, and who are deeply attached to pleasure and wordly power, cannot attain the determinate intellect concentrated on God. (42,43,44)

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्।। ४५।।

हे अर्जुन ! वेद उपर्युक्त प्रकार से तीनों गुणों के कार्यरूप समस्त भोगों एवं उनके साधनों का प्रतिपादन करनेवाले हैं, इसलिये तू उन भोगों एवं उनके साधनोंमें आसक्तिहीन, हर्ष-शोकादि द्वन्द्वों से रहित, नित्यवस्तु परमात्मा में स्थित, योगक्षेम को न चाहनेवाला और स्वाधीन अन्तःकरणवाला हो । ॥४५॥

Arjuna, the Vedas thus deal with the evolutes of the three Gunas (modes of prakrti), viz, worldly enjoyments and the means of attaining such enjoyments; be thou indifferent to these enjoyments and their means, rising above pairs of opposites like pleasure and pain etc., established in the Eternal Existence (God), absolutely unconcerned about the supply of wants and the preservation of what has been already attained, and self controlled. (45)

यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके ।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥ ४६॥

सब ओर से परिपूर्ण जलाशय के प्राप्त हो जानेपर छोटे जलाशय में मनुष्य का जितना प्रयोजन रहता है, ब्रह्म को तत्वसे जाननेवाले ब्राह्मण का समस्त वेदोंमें उतना ही प्रयोजन रह जाता है । ॥४६॥

A Brahman, who has obtained enlightenment, has the same use for all the Vedas as one who stands at the brink of a sheet of water overflowing on all sides has for a small reservoir of water. (46)

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥ ४७॥

तेरा कर्म करने में ही अधिकार है, उसके फलोंमें कभी नहीं। इसलिये तू कर्मों के फल का हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करनेमें भी आसक्ति न हो। ॥४७॥

Your right is to work only, but never to the fruit thereof. Be not instrumental in making your actions bear fruit, nor let your attachment be to inaction. (47)

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥ ४८॥

हे धनञ्जय ! तू आसक्तिको त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धिमें समान बुद्धिवाला होकर योगमें स्थित हुआ कर्तव्यकर्मों को कर, समत्व ही योग कहलाता है । ॥४८॥

Arjuna, perform your duties established in Yoga, renouncing attachment, and even–tempered in success and failure; evenness of temper is called Yoga. (48)

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनञ्जय ।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥ ४९॥

इस समत्वरूप बुद्धियोग से सकाम कर्म अत्यन्त ही निम्न श्रेणीका है। इसलिये हे धनञ्जय ! तू समबुद्धि में ही रक्षा का उपाय ढूँढ अर्थात् बुद्धियोग का ही आश्रय ग्रहण कर, क्योंकि फल के हेतु बननेवाले अत्यन्त दीन हैं । ॥४९॥

Action (with a selfish motive) is far inferior to this Yoga in the form of equanimity. Do you seek refuge in this enquipise of mind, Arjuna; for poor and wretched are those who are instrumental in making their actions bear fruit. (49)

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥ ५०॥

समबुद्धियुक्त पुरुष पुण्य और पाप दोनों को इसी लोक में त्याग देता है, अर्थात् उनसे मुक्त हो जाता है। इससे तू समत्वरूप योग में ही लग जा, यह समत्वरूप योग ही कर्मों में कुशलता है अर्थात् कर्मबन्धन से छूटने का उपाय है। ॥५०॥

Endowed with equanimity, one sheds in this life both good and evil. Therefore, strive for the practice of this Yoga of equanimity. Skill in action lies in (the practice of this) Yoga. (50)

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥५१॥

क्योंकि समबुद्धि से युक्त ज्ञानीजन कर्मों से उत्पन्न होनेवाले फल को त्यागकर जन्मरूप बन्धनसे मुक्त हो, निर्विकार परमपद को प्राप्त हो जाते हैं। ॥५१॥

For wise men possessing an equipoised mind, renouncing the fruit of actions and freed from the shackles of birth, attain the blissful supreme state. (51)

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥ ५२॥

जिस काल में तेरी बुद्धि मोहरूप दलदल को भलीभाँति पार कर जायगी, उस समय तू सुने हुए और सुनने में आनेवाले इस लोक और परलोक सम्बन्धी सभी भोगों से वैराग्य को प्राप्त हो जायगा। ॥५२॥

When your mind will have fully crossed the mire of delusion, you will then grow indifferent to the enjoyments of this world and the next that have been heard of as well as to those that are yet to be heard of. (52)

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥ ५३॥

भाँति-भाँतिके वचनों को सुननेसे विचलित हुई तेरी बुद्धि जब परमात्मा में अचल और स्थिर ठहर जायगी, तब तू योग को प्राप्त हो जायगा अर्थात् तेरा परमात्मा से नित्य संयोग हो जायगा । ॥५३॥

When your intellect, confused by hearing conflicting statements, will rest, steady and undistracted (in meditation) on God, you will then attain Yoga (for lasting union with God). (53)

अर्जुन उवाच ।
स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ॥ ५४॥

अर्जुन बोले--हे केशव! समाधि में स्थित परमात्मा को प्राप्त हुए स्थिरबुद्धि पुरुष का क्या लक्षण है? वह स्थिरबुद्धि पुरुष कैसे बोलता है, कैसे बैठता है और कैसे चलता है? ॥ ५४॥

Arjuna said: Kṛṣṇa, what is the definition (mark) of a God-realized soul, stable of mind and established in Samadhi (perfect tranquillity of mind)? How does the man of stable mind speak, how does he sit, how does he walk? (54)

श्रीभगवानुवाच ।
प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ ५५॥

श्रीभगवान् बोले—हे अर्जुन ! जिस काल में यह पुरुष मनमें स्थित सम्पूर्ण कामनाओं को भलीभाँति त्याग देता है और आत्मासे आत्मामें ही सन्तुष्ट रहता है, उस कालमें वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है । ॥५५॥

Śri Bhagavān said: Arjuna, when one thoroughly dismisses all cravings of the mind, and is satisfied in the self through (the joy of) the self, then he is called stable of mind. (55)

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ ५६॥

दुःखों की प्राप्ति होनेपर जिसके मनमें उद्वेग नहीं होता, सुखोंकी प्राप्तिमें जो सर्वथा निःस्पृह है तथा जिसके राग, भय और क्रोध नष्ट हो गये हैं, ऐसा मुनि स्थिरबुद्धि कहा जाता है । ॥५६॥

The sage, whose mind remains unperturbed amid sorrows, whose thirst for pleasures has altogether disappeared, and who is free from passion, fear and anger, is called stable of mind. (56)

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५७॥

जो पुरुष सर्वत्र स्नेहरहित हुआ उस-उस शुभ या अशुभ वस्तुओं को प्राप्त होकर न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है, उसकी बुद्धि स्थिर है । ॥५७॥

He who is unattached to everything, and meeting with good and evil, neither rejoices nor recoils, his mind is stable. (57)

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५८॥

और कछुआ सब ओरसे अपने अंगोंको जैसे समेट लेता है, वैसे ही जब यह पुरुष इन्द्रियों के विषयों से इन्द्रियों को सब प्रकारसे हटा लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर है। (ऐसा समझना चाहिये) ॥५८॥

When like a tortoise, which draws in its limbs from all directions, he withdraws his senses from the sense-objects, his mind should be (considered as) stable. (58)

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥ ५९॥

इन्द्रियों के द्वारा विषयों को ग्रहण न करनेवाले पुरुषके भी केवल विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, परन्तु उनमें रहनेवाली आसक्ति निवृत्त नहीं होती। इस स्थितप्रज्ञ पुरुष की तो आसक्ति भी परमात्मा का साक्षात्कार करके निवृत्त हो जाती हैं । ॥५९॥

Sense-objects turn away from him, who does not enjoy them with his senses; but the taste for them persists, this relish also disappears in the case of the man of stable mind when he sees the Supreme. (59)

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥ ६०॥

हे अर्जुन ! आसक्ति का नाश न होनेके कारण ये प्रमथन स्वभाववाली इन्द्रियाँ यत्न करते हुए बुद्धिमान् पुरुष के मन को भी बलात्कार से हर लेती हैं । ॥६०॥

Turbulent by nature, the senses even of a wise man, who is practising self-control, forcibly carry away his mind, Arjuna. (60)

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।। ६१।।

इसलिये साधक को चाहिये कि वह उन सम्पूर्ण इन्द्रियों को वशमें करके समाहितचित हुआ मेरे परायण होकर ध्यानमें बैठे; क्योंकि जिस पुरुषकी इन्द्रियाँ वशमें होती हैं उसीकी बुद्धि स्थिर हो जाती है ! ।।६१ ।।

Therefore, having controlled them all and collecting his mind one should sit for meditation, devoting oneself heart and soul to Me. For he, whose senses are mastered, is known to have a stable mind. (61)

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।। ६२।।

विषयों का चिन्तन करनेवाले पुरुष की उन विषयोंमें आसक्ति हो जाती है, आसक्ति से उन विषयों की कामना उत्पन्न होती है और कामना में विघ्न पड़नेसे क्रोध उत्पन्न होता है । (६२)

The man dwelling on sense-objects develops attachment for them; from attachment springs up desire, and from desire (unfulfilled) ensues anger. (62)

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।। ६३।।

क्रोधसे अत्यन्त मूढभाव उत्पन्न हो जाता है, मूढभावसे स्मृतिमें भ्रम हो जाता है, स्मृतिमे भ्रम हो जानेसे बुद्धि अर्थात् ज्ञानशक्ति का नाश हो जाता है और बुद्धि का नाश हो जानेसे यह पुरुष अपनी स्थिति से गिर जाता है । ॥६३॥

From anger arises infatuation; from infatuation, confusion of memory; from confusion of memory, loss of reason; and from loss of reason one goes to complete ruin. (63)

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥ ६४॥

परन्तु अपने अधीन किये हुए अन्तःकरण वाला साधक अपने वशमें की हुई राग-द्वेषसे रहित इन्द्रियोंद्वारा विषयोंमें विचरण करता हुआ अन्तःकरण की प्रसन्नता को प्राप्त होता है । ॥६४॥

But the self-controlled practicant, while enjoying the various sense-objects through his senses, which are disciplined and free from likes and dislikes, attains placidity of mind. (64)

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥ ६५॥

अन्तःकरण की प्रसन्नता होने पर इसके सम्पूर्ण दुःखोंका अभाव हो जाता है और उस प्रसन्न चित्तवाले कर्मयोगी की बुद्धि शीघ्र ही (सब ओरसे हटकर एक परमात्मामें ही) भलीभाँति स्थिर हो जाती है। ॥६५॥

With the attainment of such placidity of mind, all this sorrows come to an end, and the intellect of such a person of tranquil mind soon withdrawing itself from all sides, becomes firmly established in God. (65)

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥६६॥

न जीते हुए मन और इन्द्रियोवाले पुरुष में निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती और उस अयुक्त मनुष्य के अन्तःकरण में भावना भी नहीं होती तथा भावनाहीन मनुष्य को शान्ति नहीं मिलती और शान्तिरहित मनुष्य को सुख कैसे मिल सकता है? ॥६६॥

He who has not controlled his mind and senses can have no reason; nor can such an undisciplined man think of God. The unthinking man can have no peace; and how can there be happiness for one lacking peace of mind? (66)

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनु विधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥ ६७॥

क्योंकि जैसे जलमें चलनेवाली नाव को वायु हर लेती है, वैसे ही विषयों में विचरती हुई इन्द्रियोंमेंसे मन जिस इन्द्रिय के साथ रहता है, वह एक ही इन्द्रिय इस अयुक्त पुरुष की बुद्धिको हर लेती है । ॥६७॥

As the wind carries away a boat upon the waters, even so of the senses moving among sense-objects, the one to which the mind is joined takes away his discrimination. (67)

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६८॥

इसलिये हे महाबाहो! जिस पुरुष की इन्द्रियाँ इन्द्रियों के विषयोंसे सब प्रकार निग्रह की हुई हैं, उसीकी बुद्धि स्थिर है । ॥६८॥

Therefore, Arjuna, he, whose senses are completely restrained from their objects, is said to have a stable mind. (68)

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ।। ६९।।

सम्पूर्ण प्राणियों के लिये जो रात्रि के समान है, उस नित्य शांतस्वरूप परमानन्द की प्राप्तिमें स्थितप्रज्ञ योगी जागता है और जिस नाशवान् सांसारिक सुखकी प्राप्तिमें सब प्राणी जागते हैं, परमात्मा के तत्त्व को जाननेवाले मुनि के लिये वह रात्रिके समान है । ।।६९।।

That which is night to all beings, in that state (of Divine Knowledge and supreme Bliss) the God-realized Yogi keeps awake, and that (the ever changing, transient worldly happiness) in which all beings keep awake is night to the seer. (69)

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ।। ७०।।

जैसे नाना नदियों के जल जब सब ओरसे परिपूर्ण, अचल प्रतिष्ठावाले समुद्र में उसको विचलित न करते हुए ही समा जाते हैं, वैसे ही सब भोग जिस स्थितप्रज्ञ पुरुष में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न किये बिना ही समा जाते हैं, वही पुरुष परम शान्तिको प्राप्त होता है, भोगोंको चाहनेवाला नहीं । ।।७०।।

As the waters of different rivers enter the ocean which though full on all sides remains undisturbed, likewise he in whome all enjoyments merge themselves attains peace; not he who hankers after such enjoyments. (70)

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ।। ७१।।

जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओं को त्यागकर ममतारहित, अहंकाररहित और स्पृहारहित हुआ विचरता है, वही शान्तिको प्राप्त होता है। ॥७१॥

He who has given up all desires, and moves free from attachment, egoism and thirst for enjoyment attains peace. (71)

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥७२॥

हे अर्जुन ! यह ब्रह्म को प्राप्त हुए पुरुष की स्थिति है; इसको प्राप्त होकर योगी कभी मोहित नहीं होता और अन्तकालमें भी इस ब्राह्मी स्थितिमें स्थित होकर ब्रह्मानन्दको प्राप्त हो जाता है । (७२)

Arjuna, such is the state of the God-realized soul; having reached this state, he overcomes delusion. And established in this state, even at the last moment, he attains Brahmic-Bliss. (72)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्ययोगो नाम
द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

॥ ॐ श्री कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥

अथ श्रीमद्भगवद्गीता

अथ तृतीयोऽध्यायः

ŚRĪMAD BHAGAVAD GĪTĀ

CHAPTER III

अथ तृतीयोऽध्यायः

अर्जुन उवाच ।
ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव॥ १॥

अर्जुन बोले—हे जनार्दन ! यदि आपको कर्म की अपेक्षा ज्ञान श्रेष्ठ मान्य है तो फिर हे केशव ! मुझे भयंकर कर्म में क्यों लगाते हैं ? ॥१॥

Arjuna said: Kṛṣṇa if you consider Knowledge as superior to Action, why then do You urge me to this dreadful action, Keśava! (1)

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्॥ २॥

आप मिले हुए-से वचनों से मेरी बुद्धि को मानो मोहित कर रहे हैं। इसलिये उस एक बात को निश्चित करके कहिये जिससे मैं कल्याण को प्राप्त हो जाऊँ। ॥२॥

You are, as it were, puzzling my mind by these seemingly involved expressions; therefore, tell me definitely the one discipline by which I may obtain the highest good. (2)

श्रीभगवानुवाच ।
लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥ ३॥

श्रीभगवान् बोले— हे निष्पाप ! इस लोक में दो प्रकार की निष्ठा मेरे द्वारा पहले कही गयी है। उनमेंसे सांख्य योगियों की निष्ठा तो ज्ञानयोग से और योगियों की निष्ठा कर्मयोग से होती है। ॥३॥

Śri Bhagavan said: Arjuna, in this world two courses of Sādhanā (spiritual discipline) have been enunciated by Me in the past. In the case of the Sānkhyayogi, the Sādhanā proceeds along the path of Knowledge; whereas in the case of the Karmayogi, it proceeds along the path of Action. (3)

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥ ४॥

मनुष्य न तो कर्मों को आरम्भ किये बिना निष्कर्मता को यानी योगनिष्ठा को प्राप्त होता है और न कर्मों के केवल त्यागमात्र से सिद्धि यानी सांख्यनिष्ठा को ही प्राप्त होता है। ॥४॥

Man does not attain freedom from action (culmination of the discipline of Action) without entering upon action; nor does he reach perfection (culmination of the discipline of Knowledge) merely by ceasing to act. (4)

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ ५॥

निःसन्देह कोई भी मनुष्य किसी भी काल में क्षणमात्र भी बिना कर्म किये नहीं रहता, क्योंकि सारा मनुष्य समुदाय प्रकृति जनित गुणों द्वारा परवश हुआ कर्म करने के लिये बाध्य किया जाता है । ॥५॥

Surely none can ever remain inactive even for a moment; for everyone is helplessly driven to action by nature-born qualities. (5)

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥ ६॥

जो मूढबुद्धि मनुष्य समस्त इन्द्रियों को हठपूर्वक ऊपर से रोक कर मन से उन इन्द्रियों के विषयों का चिन्तन करता रहता है, वह मिथ्याचारी अर्थात् दम्भी कहा जाता है । ॥६॥

He who outwardly restraining the organs of sense and action, sits mentally dwelling on the objects of senses, that man of deluded intellect is called a hypocrite. (6)

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥ ७॥

किन्तु हे अर्जुन! जो पुरुष मन से इन्द्रियों को वशमें करके अनासक्त हुआ समस्त इन्द्रियों द्वारा कर्मेन्द्रियों से कर्मयोग का आचरण करता है, वही श्रेष्ठ है । ॥७॥

On the other hand, he who controlling the organs of sense and action by the power of his will, and remaining unattached, undertakes the Yoga of Action through those organs, Arjuna, he excels. (7)

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ॥ ८॥

तू शास्त्रविहित कर्तव्यकर्म कर, क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है, तथा कर्म न करनेसे तेरा शरीर-निर्वाह भी नहीं सिद्ध होगा । ॥८॥

Therefore, do perfom your allotted duty; for action is superior to inaction. Desisting from action, you cannot even maintain your body. (8)

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर ॥ ९॥

यज्ञ के निमित्त किये जानेवाले कर्मों के अतिरिक्त दूसरे कर्मों में लगा हुआ ही यह मनुष्य समुदाय कर्मों से बँधता है। इसलिये हे अर्जुन! तू आसक्ति से रहित होकर उस यज्ञ के निमित्त ही भलीभाँति कर्तव्य कर्म कर । ॥९॥

Man is bound by his own action except when it is performed for the sake of sacrifice. Therefore, Arjuna, do you efficiently perform your duty, free from attachment, for the sake of sacrifice alone. (9)

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥ १०॥

प्रजापति ब्रह्मा ने कल्प के आदि में यज्ञसहित प्रजाओं को रचकर उनसे कहा कि तुम लोग इस यज्ञ के द्वारा वृद्धि को प्राप्त होओ और यह यज्ञ तुम लोगों को इच्छित भोग प्रदान करनेवाला हो। ॥१०॥

Having created mankind along with the spirit of sacrifice at the beginning of creation the Creator, Brahma, said to them, You shall prosper by this; may this yield the enjoyment you seek. (10)

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥ ११॥

तुम लोग इस यज्ञ के द्वारा देवाताओं को उन्नत करो और वे देवता तुम लोगों को उन्नत करें। इस प्रकार निःस्वार्थभाव से एक-दूसरे को उन्नत करते हुए तुम लोग परम कल्याण को प्राप्त हो जाओगे । ॥११॥

``Foster the gods through this (sacrifice), and let the gods be gracious to you. Each fostering other disinterestedly, you will attain the highest good. (11)

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ॥ १२॥

यज्ञ के द्वारा बढ़ाये हुए देवता तुम लोगों को बिना माँगे ही इच्छित भोग निश्चय ही देते रहेंगे। इस प्रकार उन देवताओं के द्वारा दिये हुए भोगों को जो पुरुष उनको बिना दिये स्वयं भोगता है, वह चोर ही है। ॥१२॥

``Fostered by sacrifice, the gods will surely bestow on you unasked all the desired enjoyments." He who enjoys the gifts bestowed by them, without giving them in return, is undoubtedly a thief. (12)

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥ १३॥

यज्ञ से बचे हुए अन्न को खानेवाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापों से मुक्त हो जाते हैं और जो पापी लोग अपना शरीरपोषण करनेके लिये ही अन्न पकाते हैं, वे तो पाप को ही खाते हैं । ॥१३॥

The virtuous who partake of what is left over after sacrifice are absolved of all sins. Those sinful ones who cook for the sake of nourishing their body alone eat only sin.(13)

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥ १४॥
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥ १५॥

सम्पूर्ण प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न की उत्पत्ति वृष्टि से होती है, वृष्टि यज्ञ से होती है और यज्ञ विहित कर्मों से उत्पन्न होनेवाला है। कर्म समुदाय को तू वेद से उत्पन्न और वेद को अविनाशी परमात्मा से उत्पन्न हुआ जान, इससे सिद्ध होता है कि सर्वव्यापी परम अक्षर परमात्मा सदा ही यज्ञ में प्रतिष्ठित है। ॥१४, १५॥

All beings are evolved from food; production of food is dependent on rain; rain ensues from sacrifice, and sacrifice is rooted in prescribed action. Know that prescribed action has its origin in the Vedas, and the Vedas proceed from the Indestructible (God); hence the pervading Infinite is always present in sacrifice. (14, 15)

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति॥ १६॥

हे पार्थ! जो पुरुष इस लोक में इस प्रकार परम्परा से प्रचलित सृष्टिचक्र के अनुकूल नहीं बरतता अर्थात् अपने कर्तव्यका पालन नहीं करता, वह इन्द्रियों के द्वारा भोगों में रमण करनेवाला पापायु पुरुष व्यर्थ ही जीता है। ॥१६॥

Arjuna, he who does not follow the wheel of creation thus set going in this world (i.e. does not perform his duties), sinful and sensual, he lives in-vain. (16)

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते॥ १७॥

परन्तु जो मनुष्य आत्मा में ही रमण करनेवाला और आत्मामें ही तृप्त तथा आत्मा में ही सन्तुष्ट हो उसके लिये कोई कर्तव्य नहीं है। ॥१७॥

He, however, who takes delight in the Self alone and is gratified with the Self, and is contented in the Self, has no duty. (17)

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥ १८॥

उस महापुरुष का इस विश्वमें न तो कर्म करनेसे कोई प्रयोजन रहता है और न कर्मों के न करने से ही कोई प्रयोजन रहता है तथा सम्पूर्ण प्राणियों में भी इसका कश्चिन्मात्र भी स्वार्थ का सम्बन्ध नहीं रहता। ॥१८॥

In this world that great soul has no use whatsoever for things done nor for things not done; nor has he selfish dependence of any kind on any creature. (18)

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥ १९॥

इसलिये तू निरन्तर आसक्ति से रहित होकर सदा कर्तव्यकर्म को भलीभाँति करता रह। क्योंकि आसक्ति से रहित होकर कर्म करता हुआ मनुष्य परमात्मा को प्राप्त हो जाता है । ॥१९॥

Therefore, go on efficiently doing your duty without attachment. Doing work without attachment man attains the Supreme. (19)

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोकसङ्ग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि ॥ २०॥

जनकादि ज्ञानीजन भी आसक्ति रहित कर्मद्वारा ही परम सिद्धि को प्राप्त हुए थे। इसलिये तथा लोकसंग्रह को देखते हुए भी तू कर्म करने के ही योग्य है, अर्थात् तुझे कर्म करना ही उचित है । ॥२०॥

It is through action (without attachment) alone that Janaka and other wise men reached perfection. Having an eye to maintenance of the world order too you should take to action. (20)

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ।। २१।।

श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं। वह जो कुछ प्रमाण कर देता है, समस्त मनुष्य समुदाय उसी के अनुसार बरतने लग जाते हैं । ।।२१।।

For whatever a great man does, that very thing other men also do; whatever standard he sets up, the generality of men follow the same. (21)

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन ।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ।। २२।।

हे अर्जुन ! मुझे इन तीनों लोकों में न तो कुछ कर्तव्य है और न कोई भी प्राप्त करने योग्य वस्तु अप्राप्त है, तो भी मैं कर्म में ही बरतता हूँ । ।।२२।।

Arjuna, there is nothing in all the three worlds for Me to do, nor is there anything worth attaining unattained by Me, yet I continue to work. (22)

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ।। २३।।

क्योंकि हे पार्थ ! यदि कदाचित् मैं सावधान होकर कर्मों मे न बरतूँ तो बड़ी हानि हो जाय; क्योंकि मनुष्य सब प्रकारसे मेरे ही मार्गका अनुसरण करते हैं । ।।२३।।

Should I not engage in action, scrupulously at any time, great harm will come to the world; for, Arjuna, men follow My way in all matters. (23)

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ।
सङ्करस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥ २४॥

इसलिये यदि मै कर्म न करुँ तो ये सब मनुष्य नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगें और मैं संकरता का करने वाला होऊँ तथा इस समस्त प्रजाको नष्ट करने वाला बनूँ । ॥२४॥

If I cease to act, these worlds will perish; nay, I should prove to be the cause of confusion, and of the destruction of these people. (24)

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत ।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसङ्ग्रहम् ॥ २५॥

हे भारत ! कर्म में आसक्त हुए अज्ञानीजन जिस प्रकार कर्म करते हैं, आसक्तिरहित विद्वान् भी लोकसंग्रह करना चाहता हुआ उसी प्रकार कर्म करे । ॥२५॥

Arjuna, as the unwise act with attachment, so should the wise man, seeking maintenance of the world order, act without attachment. (25)

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम् ।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ॥ २६॥

परमात्मा के स्वरूप में अटल स्थित हुए ज्ञानी पुरुष को चाहिये कि वह शास्त्रविहित कर्मो में आसक्ति-वाले अज्ञानियों की बुद्धिमें भ्रम अर्थात् कर्मों में अश्रद्धा उत्पन्न न करे। किन्तु स्वयं शास्त्रविहित समस्त कर्म भलीभाँति करता हुआ उनसे भी वैसे ही करवावे । ॥२६॥

A wise man established in the Self should not unsettle the mind of the ignorant attached to action, but should get them to perform all their duties, duly perform his own duties. (26)

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥ २७॥

वास्तव में सम्पूर्ण कर्म सब प्रकार से प्रकृति के गुणों द्वारा किये जाते हैं तो भी जिसका अन्तःकरण अहंकार से मोहित हो रहा है, ऐसा अज्ञानी "मैं कर्ता हूँ," ऐसा मानता है । ॥२७॥

All actions are being performed by the modes of Prakṛti (Promordial Matter). The fool, whose mind is deluded by egoism, thinks: "I am the doer." (27)

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते ॥ २८॥

परन्तु हे महाबाहो ! गुणविभाग और कर्मविभाग के तत्व को जानने वाला ज्ञानयोगी सम्पूर्ण गुण ही गुणों में बरत रहे हैं, ऐसा समझकर उनमें आसक्त नहीं होता । ॥२८॥

He, however, who has true insight into the respective spheres of Guṇas (modes of Prakṛti) and their actions, holding that it is the Guṇas (in the shape of the senses, mind, etc.,) that move among the Guṇas (objects of perception), does not get attached to them, Arjuna. (28)

प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु ।
तानकृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नविन्न विचालयेत् ॥ २९॥

प्रकृति के गुणों से अत्यन्त मोहित हुए मनुष्य गुणों में और कर्मों में आसक्त रहते है, उन पूर्णतया न समझने वाले मन्दबुद्धि अज्ञानियों को पूर्णतया जानने वाला ज्ञानी विचलित न करे । ॥२९॥

Those who are completely deluded by the Guṇas (modes) of Prakṛti remain attached to those Guṇas and actions; the man of perfect Knowledge should not unsettle the mind of those insufficiently knowing fools. (29)

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा ।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥ ३०॥

मुझ अन्तर्यामी परमात्मा में लगे हुए चित्त द्वारा सम्पूर्ण कर्मों को मुझमें अर्पण करके आशारहित, ममतारहित और सन्तापरहित होकर युद्ध कर । ॥३०॥

Therefore, dedicating all actions to me with your mind fixed on me, the self of all, freed from hope and the feeling of meum and cured of mental fever, fight. (30)

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः ।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः ॥ ३१॥

जो कोई मनुष्य दोषदृष्टि से रहित और श्रद्धायुक्त होकर मेरे इस मत का अनुसरण करते हैं वे भी सम्पूर्ण कर्मों से छूट जाते हैं । ॥३१॥

Even those men who, with an uncavilling and devout mind, always follow this teaching of Mine are released from the bondage of all actions. (31)

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम् ।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ॥ ३२॥

परन्तु जो मनुष्य मुझमें दोषारोपण करते हुए मेरे इस मतके अनुसार नहीं चलते हैं, उन मूर्खों को तू सम्पूर्ण ज्ञानों से मोहित और नष्ट हुए ही समझ। ॥३२॥

They, however, who finding fault with this teaching of Mine, do not follow it, take those fools to be deluded in the matter of all knowledge, and lost. (32)

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ॥ ३३॥

सभी प्राणी प्रकृति को प्राप्त होते हैं अर्थात् अपने स्वभाव के परवश हुए कर्म करते हैं। ज्ञानवान् भी अपनी प्रकृति के अनुसार चेष्टा करता है। फिर इसमे किसीका हठ क्या करेगा? ॥३३॥

All living creatures follow their tendencies; even the wise man acts according to the tendencies of his own nature. What use is any eternal restraint? (33)

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ॥ ३४॥

इन्द्रिय-इन्द्रिय के अर्थमें अर्थात् प्रत्येक इन्द्रिय के विषय में राग और द्वेष छिपे हुए स्थित हैं। मनुष्य को उन दोनोंके वश में नहीं होना चाहिये, क्योंकि वे दोंनों ही इसके कल्याण-मार्गमें विघ्न करनेवाले महान शत्रु हैं। ॥३४॥

Attraction and repulsion are rooted in all sense-objects. Man should never allow himself to be swayed by them, because they are the two principal enemies standing in the way of his redemption. (34)

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥ ३५॥

अच्छी प्रकार आचरण में लाये हुए दूसरे के धर्म से गुणरहित भी अपना धर्म अति उत्तम है। अपने धर्म में तो मरना भी कल्याणकारक है और दूसरे का धर्म भय को देने वाला है । ॥३५॥

One's own duty, though devoid of merit, is preferable to the duty of another well performed. Even death in the performance of one's own duty brings blessedness; another's duty is fraught with fear. (35)

अर्जुन उवाच ।
अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥ ३६॥

अर्जुन बोले–हे कृष्ण ! तो फिर यह मनुष्य स्वयं न चाहता हुआ भी बलात् लगाये हुए की भाँति किससे प्रेरित होकर पाप का आचरण करता है? ॥३६॥

Arjuna said: Now impelled by what, Kṛṣṇa does this man commit sin even involuntarily, as though driven by force ? (36)

श्रीभगवानुवाच ।
काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥ ३७॥

श्रीभगवान् बोले–रजोगुण से उत्पन्न हुआ यह काम (ही) क्रोध है, यह बहुत खाने वाला अर्थात् भोगों से कभी न अघाने वाला और बड़ा पापी है, इसको ही इस विषयमें वैरी जान । ॥३७॥

Śri Bhagavān said: It is desire begotten of the element of Rajas, which appears as wrath; nay, it is insatiable and grossly wicked. Know this to be the enemy in this case (37)

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च ।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥ ३८॥

जिस प्रकार धूएँसे अग्नि और मैलसे दर्पण ढका जाता है तथा जिस प्रकार जेरसे गर्भ ढका रहता है, वैसे ही उस कामके द्वारा यह ज्ञान ढका रहता है॥३८॥

As a flame is covered by smoke, mirror by dirt, and embryo by the amnion, so is knowledge covered by it (desire). (38)

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च॥ ३९॥

और हे अर्जुन ! इस अग्निके समान कभी न पूर्ण होनेवाले कामरूप ज्ञानियों के नित्य वैरी के द्वारा मनुष्य का ज्ञान ढका हुआ है ! ॥३९॥

And, Arjuna, Knowledge stands covered by this eternal enemy of the wise, known as desire, which is insatiable like fire. (39)

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥ ४०॥

इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि—ये सब इसके वासस्थान कहे जाते हैं। यह काम इन मन, बुद्धि और इन्द्रियोंके द्वारा ही ज्ञान को आच्छादित करके जीवात्मा को मोहित करता है । ॥४०॥

The senses, the mind and the intellect are declared to be its seat; screening the light of Truth through these; it (desire) deludes the embodied soul. (40)

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥ ४१॥

इसलिये हे अर्जुन ! तू पहले इन्द्रियों को वश में करके इस ज्ञान और विज्ञान को नाश करने वाले महान् पापी काम को अवश्य ही बलपूर्वक मार। ॥४१॥

Therefore, Arjuna, you must first control your senses, and then kill this evil thing which obstructs Jnaṇa(knowledge of the Absolute or Nirguṇa Brahma) and Vijnana (knowlege of Sākāra Brahma or manifest Divinity). (41)

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥ ४२॥

इन्द्रियों को स्थूल शरीर से परे यानी श्रेष्ठ, बलवान् और सूक्ष्म कहते हैं, इन इन्द्रियों से परे मन है, मन से भी परे बुद्धि है और जो बुद्धिसे भी अत्यन्त परे है वह आत्मा है । ॥४२॥

The senses are said to be greater than the body; but greater than the senses is the mind. Greater than the mind is the intellect; and what is greater than the intellect is He (the self) (42)

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥ ४३॥

इस प्रकार बुद्धि से परे अर्थात् सूक्ष्म, बलवान् और अत्यन्त श्रेष्ठ आत्मा को जानकर और बुद्धि के द्वारा मन को वश में करके हे महाबाहो! तू इस कामरूप दुर्जय शत्रुको मार । ॥४३॥

Thus, Arjuna, knowing that which is higher than the intellect and subduing the mind by reason, kill this enemy in the form of desire that is hard to overcome.

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगो
नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अथ श्रीमद्भगवद्गीता

अथ चतुर्थोऽध्यायः

ŚRĪMAD BHAGAVAD GĪTĀ

CHAPTER IV

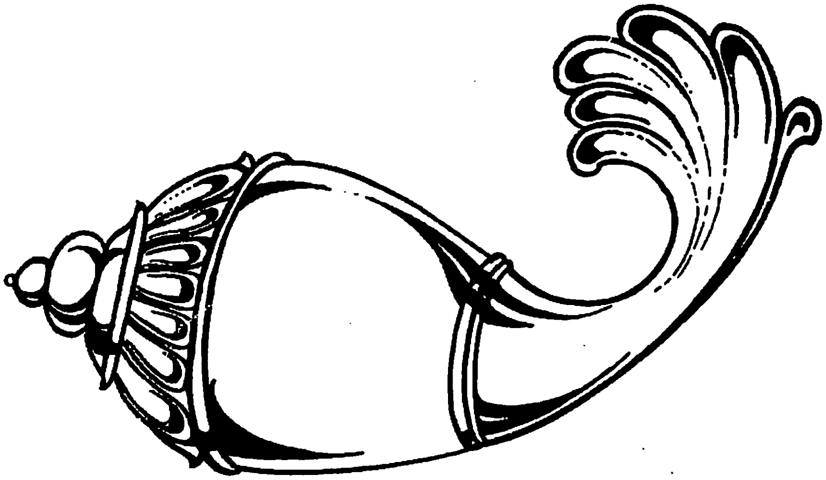

अथ चतुर्थोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच ।
इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥ १॥

श्रीभगवान् बोले—मैंने इस अविनाशी योग को सूर्य से कहा था, सूर्य ने अपने पुत्र वैवस्वत मनु से कहा और मनु ने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकु से कहा । ॥१॥

Śri Bhagavān said: I taught this immortal Yoga to Vivaswān (sun-god); Vivaswān conveyed it to Manu (his son); and Manu imparted it to (his son) Ikṣwaku. (1)

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ।
स कालेनेह महतायोगो नष्टः परंतप ॥ २॥

हे परन्तप अर्जुन! इस प्रकार परम्परा से प्राप्त इस योग को राजर्षियों ने जाना, किन्तु उसके बाद वह योग बहुत काल से इस पृथ्वीलोक में लुप्तप्राय हो गया । ॥२॥

Thus transmitted in succession from father to son, Arjuna, this Yoga remained known to the Rājarṣis (royal sages). It has however, long since disappeared from this earth. (2)

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥ ३॥

तू मेरा भक्त और प्रिय सखा है, इसलिये वही यह पुरातन योग आज मैंने तुझको कहा है, क्योंकि यह बड़ा ही उत्तम रहस्य है अर्थात् गुप्त रखने योग्य विषय है । ॥३॥

The same ancient Yoga has this day been imparted to you by Me, because you are My devotee and friend; and also because this is a supreme secret. (3)

अर्जुन उवाच ।
अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः ।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥ ४॥

अर्जुन बोले--आप का जन्म तो अर्वाचीन-अभी हाल का है और सूर्य का जन्म बहुत पुराना है अर्थात् कल्प के आदि में हो चुका था, तब मैं इस बात को कैसे समझूँ कि आप ही ने कल्प के आदि में सूर्य से यह योग कहा था? ॥४॥

Arjuna said: You are of recent origin, while the birth of Vivaswān date back to remote antiquity. How, then, am I to believe that you taught this Yoga at the beginning of creation? (4)

श्रीभगवानुवाच ।
बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥ ५॥

श्रीभगवान् बोले--हे परन्तप अर्जुन ! मेरे और तेरे बहुत से जन्म हो चुके हैं। उन सब को तू नहीं जानता, किन्तु मैं जानता हूँ। ॥५॥

Śri Bhagavān said: Arjuna, you and I have passed through many births, I remember them all; you do not remember, O chastiser of foes. (5)

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥ ६॥

मैं अजन्मा और अविनाशी स्वरूप होने पर भी तथा समस्त प्राणियों का ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृति को अधीन करके अपनी योगमाया से प्रकट होता हूँ। ॥६॥

Though birthless and deathless, and the Lord of all beings, I manifest Myself through My own Yogamāyā (divine potency), keeping My Nature (Prakṛti) under control. (6)

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ ७॥

हे भारत! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूप को रचता हूँ अर्थात् साकार रूप से लोगों के सम्मुख प्रकट होता हूँ। ॥७॥

Arjuna, whenever righteousness is on the decline, the unrighteousness is in the ascendant, then I body Myself forth. (7)

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥ ८॥

साधु पुरुषों का उद्धार करने के लिये, पाप-कर्म करने वालों का विनाश करने के लिये और धर्म की अच्छी तरह से स्थापना करने के लिये मैं युग-युग में प्रकट होता हूँ! ॥७॥

For the protection of the virtuous, for the extirpation of evil-doers, and for establishing Dharma (righteousness) on a firm footing. I am born from age to age. (8)

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥ ९॥

हे अर्जुन ! मेरे जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् निर्मल और अलौकिक हैं — इस प्रकार जो मनुष्य तत्त्व से जान लेता है, वह शरीर को त्याग कर फिर जन्म को प्राप्त नहीं होता, किन्तु मुझे ही प्राप्त होता है । ॥९॥

Arjuna, My birth and activities are divine. He who knows this in reality is not reborn on leaving his body, but comes to Me. (9)

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥ १०॥

पहले भी, जिनके राग, भय और क्रोध सर्वथा नष्ट हो गये थे और जो मुझमें अनन्य प्रेम पूर्वक स्थिर रहते थे, ऐसे मेरे आश्रित रहने वाले बहुत से भक्त उपर्युक्त ज्ञानरूप तप से पवित्र होकर मेरे स्वरूप को प्राप्त हो चुके हैं । ॥१०॥

Completely rid of passion, fear and anger, wholly absorbed in Me, depending on Me, and purified by the penance of wisdom, many have become one with Me even in the Past. (10)

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ ११॥

हे अर्जुन! जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ, क्योंकि सभी मनुष्य सब प्रकार से मेरे ही मार्ग का अनुसरण करते हैं । ॥११॥

Arjuna, howsoever men seek Me; even so do I approach them; for all men follow my path in every way. (11)

काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः ।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥ १२॥

इस मनुष्यलोक में कर्मों के फल को चाहने वाले लोग देवताओं का पूजन किया करते हैं, क्योंकि उनकों कर्मों से उत्पन्न हानेवाली सिद्धि शीघ्र मिल जाती है । ॥१२॥

In this world of human beings, men seeking the fruition of their activities worship the gods; for success born of actions follows quickly. (12)

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥ १३॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र - इन चार वर्णों का समूह, गुण और कर्मों के विभागपूर्वक मेरे द्वारा रचा गया है। इस प्रकार उस सृष्टि रचनादि कर्म का कर्ता होने पर भी मुझ अविनाशी परमेश्वर को तू वास्तव में अकर्ता ही जान । ॥१३॥

The four oders of society (viz, the Brahman, the Kṣatriya, the Vaiśya and the Śudra) were created by Me classifying them according to the mode of Prakṛti predominant in each and apportioning corresponding duties to them; though the author of this creation, know Me, the immortal Lord, to be a non-doer. (13)

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा ।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ॥ १४॥

कर्मों के फलमें मेरी स्पृहा नहीं है, इसलिये मुझे कर्म लिप्त नहीं करते, इस प्रकार जो मुझे तत्त्व से जान लेता है, वह भी कर्मों से नहीं बँधता। ॥१४॥

Since I have no craving for the fruit of actions, actions do not contaminate Me. Even he who thus knows Me in reality is not bound by actions. (14)

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ॥ १५॥

पूर्वकाल के मुमुक्षुओं ने भी इस प्रकार जानकर ही कर्म किये हैं। इसलिये तू भी पूर्वजों द्वारा सदासे किये जानेवाले कर्मों को ही कर॥१५॥

Having known thus, action was performed even by the ancient seekers for liberation; therefore, do you also perform such actions as have been performed by the ancients from the beginning of time. (15)

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः ।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥ १६

कर्म क्या है? और अकर्म क्या है?—इस प्रकार इसका निर्णय करने में बुद्धिमान् पुरुष भी मोहित हो जाते हैं। इसलिये वह कर्मतत्त्व मैं तुझे भलीभाँति समझाकर कहूँगा, जिसे जानकर तू अशुभ से अर्थात् कर्मबन्धन से मुक्त हो जायगा । ॥१६॥

What is action? and what is inaction? Even men of intelligence are puzzled over this question. Therefore, I shall expound to you the truth about action, knowing which you will be freed from its evil effect (binding nature). (16)

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥ १७॥

कर्म का स्वरूप भी जानना चाहिये और अकर्म का स्वरूप भी जानना चाहिये तथा विकर्म का स्वरूप भी जानना चाहिये; क्योंकि कर्म की गति गहन है । ॥१७॥

The truth about action must be known and the truth of inaction also must be known; even so the truth about prohibited action must be known. For mysterious are the ways of action. (17)

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्॥ १८॥

जो मनुष्य कर्म में अकर्म देखता है और जो अकर्म में कर्म देखता है, वह मनुष्यों में बुद्धिमान् है और वह योगी समस्त कर्मों को करनेवाला है॥१८॥

He who sees inaction in action, and action in inaction, is wise among men; he is a yogi, who has performed all actions. (18)

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसङ्कल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः॥ १९॥

जिसके सम्पूर्ण शास्त्रसम्मत कर्म बिना कामना और संकल्प के होते हैं तथा जिसके समस्त कर्म ज्ञानरूप अग्नि के द्वारा भस्म हो गये हैं, उस महापुरुष को ज्ञानीजन भी पंडित कहते हैं। ॥१९॥

Even the wise call him a sage, whose undertakings are all free from desire and thoughts of the world, and whose actions are burnt up by the fire of wisdom. (19)

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति सः॥ २०॥

जो पुरुष समस्त कर्मों में और उनके फल में आसक्ति का सर्वथा त्याग करके संसार के आश्रय से रहित हो गया है और परमात्मा में नित्यतृप्त है, वह कर्मों में भलीभाँति बर्तता हुआ भी वास्तव में कुछ भी नहीं करता है। ॥२०॥

He who, having totally given up attachment to actions and their fruit, no longer depends on the world, and is ever satisfied, does nothing at all, though fully engaged in action. (20)

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥ २१॥

जिसका अन्तःकरण और इन्द्रियों के सहित शरीर जीता हुआ है और जिसने समस्त भोगों की सामग्री का परित्याग कर दिया है, ऐसा आशारहित पुरुष केवल शरीर-सम्बन्धी कर्म करता हुआ भी पाप को नहीं प्राप्त होता । ॥२१॥

Having subdued his mind and body, and given up all objects of enjoyment, and free from craving, he who performs sheer bodily action does not incur sin. (21)

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः ।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते ॥ २२॥

जो बिना इच्छा के अपने-आप प्राप्त हुए पदार्थ में सदा सन्तुष्ट रहता है, जिसमें ईर्ष्या का सर्वथा अभाव हो गया है, जो हर्ष-शोक आदि द्वन्द्वों से सर्वथा अतीत हो गया है, — ऐसा सिद्धि और असिद्धि में सम रहने वाला कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी उनसे नहीं बँधता । ॥२२॥

The Karmayogi, who is contented with whatever is got unsought, is free from jealousy and transcended all pairs of opposites (like joy and grief), and is balanced in success and failure, is not bound by his action. (22)

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥ २३॥

जिसकी आसक्ति सर्वथा नष्ट हो, गयी है, जो देहाभिमान और ममता से रहित हो गया है, जिसका चित्त निरन्तर परमात्मा के ज्ञान में स्थित रहता है ऐसे केवल यज्ञ सम्पादन के लिये कर्म करने वाले मनुष्य के सम्पूर्ण कर्म भलीभाँति विलीन हो जाते हैं। ॥२३॥

All his actions melt away, who is free from attachment, who has no identification with the body and does not claim it as his own, whose mind is established in the Knowledege of Self and who works merely for the sake of sacrifice. (23)

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ २४॥

जिस यज्ञ में अर्पण अर्थात् स्रुवा आदि भी ब्रह्म है और हवन किये जाने योग्य द्रव्य भी ब्रह्म है तथा ब्रह्मरूप कर्ता के द्वारा ब्रह्मरूप अग्नि में आहुति देना रूप क्रिया भी ब्रह्म है, — उस ब्रह्म कर्म में स्थित रहने वाले योगी द्वारा प्राप्त किये जाने योग्य फल भी ब्रह्म ही है। ॥२४॥

In the practice of seeing Brahmā every where a form of sacrifice Brahmā is the ladle (with which the oblation is poured into the fire, etc.,); Brahmā, again, is the oblation; Brahmā is the fire, Brahmā itself the sacrificer, and so Brahmā itself constitutes the act of pouring the oblation into the fire. And finally Brahmā is the goal to be reached by him who is absorbed in Brahmā as the act of such sacrifice. (24)

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ॥ २५॥

दूसरे योगीजन देवताओं के पूजनरूप यज्ञ का ही भलीभाँति अनुष्ठान किया करते हैं और अन्य योगीजन परब्रह्म परमात्मारूप अग्नि में अभेद दर्शनरूप यज्ञ के द्वारा ही आत्मरूप यज्ञ का हवन किया करते हैं।॥२५॥

Other yogis duly offer sacrifice only in the shape of worship to gods. Other pour into the fire of Brahmā the very sacrifice in the shape of the self through the sacrifice known as the perception of identity. (25)

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति ।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ।। २६ ।।

अन्य योगीजन श्रोत्र आदि समस्त इन्द्रियों को संयमरूप अग्नियों में हवन किया करते हैं और दूसरे योगी लोग शब्दादि समस्त विषयों को इन्द्रियरूप अग्नियों में हवन किया करते हैं । ।।२६।।

Others offers as sacrifice their senses of hearing etc. into the fires of self-discipline. Other yogis, again, offer sound and other objects of perception into the fires of the senses. (26)

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे ।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ।। २७ ।।

दूसरे योगीजन इन्द्रियों की सम्पूर्ण क्रियाओं को और प्राणों की समस्त क्रियाओं को ज्ञानसे प्रकाशित आत्म-संयम योगरूप अग्नि में हवन किया करते हैं । ।।२७।।

Others sacrifice all the functions of their senses and the functions of the vital airs into the fire of Yoga in the shape of self-control, kindled by wisdom. (27)

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ।। २८ ।।

कई पुरुष द्रव्यसम्बन्धी यज्ञ करने वाले हैं, कितने ही तपस्यारूप यज्ञ करने वाले हैं तथा दूसरे कितने ही योगरूप यज्ञ करने वाले हैं, कितने ही अहिंसादि तीक्ष्ण व्रतों से युक्त यत्नशील पुरुष स्वाध्यायरूप ज्ञानयज्ञ करनेवाले हैं। ॥२८॥

Some perform sacrifice with material possession; some offer sacrifice in the shape of austerities; others sacrifice through the practice of Yoga; while some striving souls, observing austere vows, perform sacrifice in the shape of wisdom through the study of sacred texts. (28)

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥ २९॥
अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥ ३०॥

दूसरे कितने ही योगीजन अपानवायु में प्राणवायु को हवन करते हैं, वैसे ही अन्य योगीजन प्राणवायु में अपानवायु को हवन करते हैं तथा अन्य कितने ही नियमित आहार करने वाले प्राणायाम परायण पुरुष प्राण और अपान की गति को रोककर प्राणों को प्राणों में ही हवन किया करते हैं। ये सभी साधक यज्ञों द्वारा पापों का नाश कर देने वाले और यज्ञोंको जानने वाले हैं। ॥२९-३०॥

Other Yogis offer the act of exhalation into that of inhalation; even so others, the act of inhalation into that of exhalation. There are still others given to the practice of Prāṇayama (breath-control), who having regulated their diet and controlled the processes exhalation and inhalation both pour their vital airs into the vital airs themselves. All these have their sins consumed away by sacrifice and understand the meaning of sacrificial worship. (29-30)

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥ ३१॥

हे कुरुश्रेष्ठ अर्जुन ! यज्ञ से बचे हुए अमृत का अनुभव करने वाले योगीजन सनातन परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते हैं, और यज्ञ न करने वाले पुरुष के लिये तो यह मनुष्यलोक भी सुखदायक नहीं है, फिर परलोक कैसे सुखदायक हो सकता है? ॥३१॥

Arjuna, Yogis who enjoy the nectar that has been left over after the performance a sacrifice attain the eternal Brahma. To the man who does not offer sacrifice, even this world is not happy; how, then, can the other world be happy ? (31)

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥ ३२॥

इसी प्रकार और भी बहुत तरह के यज्ञ वेद की वाणी में विस्तार से कहे गये हैं। उन सबको तू मन, इन्द्रिय और शरीर की क्रिया द्वारा सम्पन्न होने वाले जान, इस प्रकार तत्त्व से जानकर उनके अनुष्ठान द्वारा तू कर्मबन्धन से सर्वथा मुक्त हो जायगा । ॥३२॥

Many such forms of sacrifice have been set forth in detail through the mouth of the Vedas; know them all as involving the action of mind senses and body. Thus knowing the truth about them you shall be freed from the bondage of action (through their performance). (32)

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप ।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥ ३३॥

हे परन्तप अर्जुन ! द्रव्यमय यज्ञ की अपेक्षा ज्ञानयज्ञ अत्यन्त श्रेष्ठ है तथा यावन्मात्र सम्पूर्ण कर्म ज्ञान में समाप्त हो जाते हैं । ॥३३॥

Arjuna, sacrifice through Knowledge is superior to sacrifice performed with material things. For all actions without exception culminate in Knowledge, O son of Kunti. (33)

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ ३४॥

उस ज्ञान को तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियों के पास जाकर समझ, उनको भलीभाँति दण्डवत् प्रणाम करने से, उनकी सेवा करने से और कपट छोड़ कर सरलतापूर्वक प्रश्न करने से वे परमात्मतत्त्व को भलीभाँति जानने वाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञान का उपदेश करेंगे ॥३४॥

Understand the true nature of that Knowledge by approaching illumined soul. If you prostrate at their feet, render them service, and question them with an open and guileless heart, those wise seers of Truth will instruct you in that Knowledge. (34)

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव ।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥ ३५॥

जिसको जानकर फिर तू इस प्रकार मोह को नहीं प्राप्त होगा तथा हे अर्जुन ! जिस ज्ञान के द्वारा तू सम्पूर्ण भूतों को निःशेषभाव से पहले अपने में और पीछे मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्मा में देखेगा । ॥३५॥

Arjuna, when you have reached enlightenment, ignorance will delude you no more. In the light of that Knowledge you will see the entire creation first within your own self, and then in Me (the Oversoul). (35)

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि ॥ ३६॥

यदि तू अन्य सब पापियों से भी अधिक पाप करनेवाला है तो भी तू ज्ञानरूप नौकाद्वारा निःसन्देह सम्पूर्ण पाप समुद्र से भलीभाँति तर जायगा॥३६॥

Even though you were the faultest of all sinners, this Knowledge alone would carry you, like a raft, across all your sin. (36)

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥ ३७॥

क्योंकि हे अर्जुन! जैसे प्रज्वलित अग्नि ईंधनों को भस्ममय कर देता है, वैसे ही ज्ञानरूप अग्नि सम्पूर्ण कर्मों को भस्ममय कर देता है ॥३७॥

For, as the blazing fire turns the fuel to ashes, Arjuna, even so the fire of Knowledge turns all actions to ashes. (37)

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥ ३८॥

इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला निःसन्देह कुछ भी नहीं है। उस ज्ञान को कितने ही कालसे कर्मयोग के द्वारा शुद्धान्तःकरण हुआ मनुष्य अपने आप ही आत्मामें पा लेता है । ॥३८॥

On earth there is no purifier as great as Knowledge; he who has attained purity of heart through a prolonged practice of Karmayoga automatically sees the light of Truth in the self in course of time. (38)

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥ ३९॥

जितेन्द्रिय, साधन परायण और श्रद्धावान् मनुष्य ज्ञान को प्राप्त होता है तथा ज्ञान को प्राप्त होकर वह बिना विलम्ब के तत्काल ही भगवत्प्राप्तिरूप परम शान्ति को प्राप्त हो जाता है। ॥३९॥

He who has mastered his senses, is exclusively devoted to his practice and is full of faith, attains Knowledge; having had the revelation of Truth, he immediately attains supreme peace (in the form of God-Realization). (39)

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥ ४०॥

विवेकहीन और श्रद्धारहित संशययुक्त मनुष्य परमार्थ से अवश्य भ्रष्ट हो जाता है। ऐसे संशययुक्त मनुष्य के लिये न यह लोक है, न परलोक है और न सुख ही है। ॥४०॥

He who lacks discrimination, is devoid of faith, and is at the same time possessed by doubt is lost to the spiritual path. For the doubting soul there is neither this world nor the world beyond, nor even happiness. (40)

योगसन्न्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ॥ ४१॥

हे धनंजय ! जिसने कर्मयोग की विधि से समस्त कर्मों को परमात्मा में अर्पण कर दिया है और जिसने विवेक द्वारा समस्त संशयों का नाश कर दिया है, ऐसे वश में किये हुए अन्तःकरण वाले पुरुष को कर्म नहीं बाँधते। ॥४१॥

Arjuna, actions do not bind him who has dedicated all this actions to God according to the spirit of Karmayoga, whose doubts have been torn to shreds by wisdom, and who is self-possessed. (41)

तस्मादज्ञानसम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥ ४२॥

इसलिये हे भरतवंशी अर्जुन! तू हृदयमें स्थित अज्ञानजनित अपने संशय को विवेकज्ञानरूप तलवार द्वारा छेदन करके समत्वरूप कर्मयोग में स्थित हो जा और युद्ध के लिये खड़ा हो जा। ॥४२॥

Therefore, Arjuna, slashing to pieces, with the sword of wisdom, this doubt in your heart, born of ignorance, establish yourself in Karmayoga in the shape of even temperedness, and stand up for the fight.

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानकर्मसंन्यासयोगो
नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

॥ ॐ श्रीकृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥

अथ श्रीमद्भगवद्गीता

अथ पञ्चमोऽध्यायः

ŚRĪMAD BHAGAVAD GĪTĀ

CHAPTER V

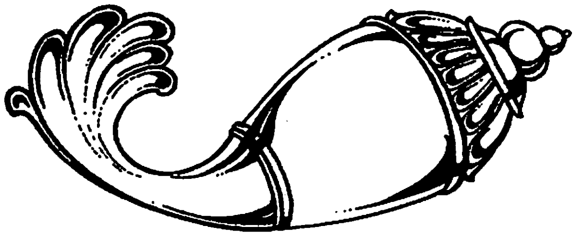

अथ पञ्चमोऽध्यायः

अर्जुन उवाच ।
सन्न्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि ।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥ १॥

अर्जुन बोलें - हे कृष्ण ! आप कर्मों के संन्यास की और फिर कर्मयोग की प्रशंसा करते हैं। इसलिये इन दोनों में से जो एक मेरे लिये भली भाँति निश्चित कल्याणकारक साधन हो, उसको कहिये । ॥१॥

Arjuna said: Kṛṣṇa, you extol Sānkhyayoga (the Yoga of Knowledge) and then the Yoga of Action. Pray tell me which of the two is decidedly conducive to my good. (1)

श्रीभगवानुवाच ।
सन्न्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥ २॥

श्रीभगवान् बोले--कर्म संन्यास और कर्मयोग, ये दोनों ही परम कल्याण के करने वाले हैं, परन्तु उन दोनों में भी कर्म संन्यास से कर्मयोग साधन में सुगम होने से श्रेष्ठ है । ॥२॥

Śri Bhagavān said: The Yoga of Knowledge and the Yoga of Action both lead to supreme Bliss. Of the two, however, the Yoga of Action (being easier of practice) is superior to the Yoga of Knowledge. (2)

ज्ञेयः स नित्यसन्न्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति ।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ॥३॥

हे अर्जुन! जो पुरुष न किसी से द्वेष करता है और न किसी की आकांक्षा करता है, वह कर्मयोगी सदा संन्यासी ही समझने योग्य है, क्योंकि राग-द्वेषादि द्वन्द्वों से रहित पुरुष सुखपूर्वक संसार बन्धन से मुक्त् हो जाता है। ॥३॥

The Karmayogi who neither hates nor desires should be ever considered a renouncer. For Arjuna, he who is free from the pairs of opposites is easily freed from bondage. (3)

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ।। ४।।

उपर्युक्त संन्यास और कर्मयोग को मूर्ख लोग पृथक्-पृथक् फल देने वाले कहते हैं न कि पण्डित जन, क्योंकि दोनों में से एक में भी सम्यक् प्रकार से स्थित पुरूष दोनों के फलरूप परमात्मा को प्राप्त होता है । ।।४।।

It is the ignorant, not the wise, who say that Sānkhyayoga and Karmayoga lead to divergent results. For one who is firmly established in either gets the fruit of both (which is the same, viz., God-Realization). (4)

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति।। ५।।

ज्ञानयोगियों द्वारा जो परमधाम प्राप्त किया जाता है, कर्मयोगियों द्वारा भी वही प्राप्त किया जाता है। इसलिये जो पुरुष ज्ञानयोग और कर्मयोग को फलरूपमें एक देखता है, वही यथार्थ देखता है। ।।५।।

The (supreme) state which is reached by the Sānkhyayogi is attained also by the Karmayogi. Therefore, he alone who sees Sānkhayoga and Karmayoga as one (so for as their result goes) really sees. (5)

सन्न्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति ।। ६।।

परन्तु हे अर्जुन ! कर्मयोग के बिना संन्यास अर्थात् मन, इन्द्रिय और शरीर द्वारा होने वाले सम्पूर्ण कर्मों में कर्तापन का त्याग प्राप्त होना कठिन है और भगवत्स्वरूप को मनन करने वाला कर्मयोगी परब्रह्म परमात्मा को शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है । ॥६॥

Without Karmayoga, however, Sānkhyayoga (or renunciation of doership in relation to all activities of the mind, senses and body) is difficult to accomplish; whereas the Karmayogi, who keeps his mind fixed on God, reaches Brahma in no time, Arjuna. (6)

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ ७॥

जिसका मन अपने वशमें है, जो जितेन्द्रिय एवं विशुद्ध अन्तःकरण वाला है और सम्पूर्ण प्राणियों का आत्मरूप परमात्मा ही जिसका आत्मा है, ऐसा कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी लिप्त नहीं होता । ॥७॥

The Karmayogi, who has fully conquered his mind and mastered his senses, whose heart is pure, and who has identified himself with the Self of all beings (viz., God), remains untainted, even though performing action. (7)

नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।
पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन् ॥ ८॥
प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ॥ ९॥

तत्त्व को जानने वाला सांख्ययोगी तो देखता हुआ, सुनता हुआ, स्पर्श करता हुआ, सूँघता हुआ भोजन करता हुआ, गमन करता हुआ, सोता हुआ, श्वास लेता हुआ, बोलता हुआ, त्यागता हुआ, ग्रहण करता हुआ तथा आँखों को खोलता और मूँदता हुआ भी, सब इन्द्रियाँ अपने-अपने अर्थों में बरत रही है, इस प्रकार समझकर निःसन्देह ऐसा माने कि मैं कुछ भी नहीं करता हूँ। ॥८,९॥

The Sānkhyayogi, however, who knows the reality of things, must believe, even though seeing, hearing, touching, smelling, eating or drinking, walking, sleeping, breathing, speaking, answering the calls of nature, grasping, and opening or closing the eyes, that he does nothing, holding that it is the senses that are moving among their objects. (8,9)

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥१०॥

जो पुरुष सब कर्मों को परमात्मा में अर्पण करके और आसक्ति को त्यागकर कर्म करता है, वह पुरुष जल से कमल के पत्ते के भाँति पाप से लिप्त नहीं होता। ॥१०॥

He who acts offering all actions to God, and shaking off attachment, remains untouched by sin, as the lotus leaf by water. (10)

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि ।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥ ११॥

कर्मयोगी ममत्वबुद्धिरहित केवल इन्द्रिय, मन, बुद्धि और शरीर द्वारा भी आसक्ति को त्यागकर अन्तःकरण की शुद्धि के लिये कर्म करते हैं। ॥११॥

The Karmayogis perform action only with their senses, mind, intellect and body as well, withdrawing the feeling of mine in respect of them and shaking off attachment, simply for the sake of self-purification. (11)

युक्तःकर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ॥ १२॥

कर्मयोगी कर्मों के फल का त्याग करके भगवत्प्राप्तिरूप शान्ति को प्राप्त होता है और सकामपुरुष कामना की प्रेरणासे फलमें आसक्त होकर बँधता है । ॥१२॥

Offering the fruit of actions to God, the Karmayogi attains everlasting peace in the shape of God-Realization, whereas, he who works with a selfish motive, being attached to the fruit of actions through desire, gets tied down. (12)

सर्वकर्माणि मनसा सन्न्यस्यास्ते सुखं वशी ।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥ १३॥

अन्तःकरण जिसके वशमें है, ऐसा सांख्ययोग का आचरण करनेवाला पुरुष न करता हुआ और न करवाता हुआ ही नवद्वारों वाले शरीररूप घर में सब कर्मों को मन से त्यागकर आनन्दपूर्वक सच्चिदानन्दघन परमात्मा के स्वरूप में स्थित रहता है । ॥१३॥

The self-controlled Sānkhyayogi, doing nothing himself and getting nothing done by others, rests happily in God. The embodiment of Truth, Knowledge and Bliss, mentally relegating all actions to the mansion of nine gates (the body with nine openings). (13)

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥ १४॥

परमेश्वर मनुष्यों के न तो कर्तापन की, न कर्मों की और न कर्मफल के संयोग की ही रचना करते हैं, किन्तु स्वभाव ही बरत रहा है। ॥१४॥

God determines not the doership nor the doings of men, nor even their contact with the fruit of actions; but it is Nature alone that functions. (14)

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः॥ १५॥

सर्वव्यापी परमेश्वर भी न किसी के पापकर्म को और न किसी के शुभकर्म को ही ग्रहण करता है, किन्तु अज्ञान के द्वारा ज्ञान ढका हुआ है, उसीसे सब अज्ञानी मनुष्य मोहित हो रहे हैं। ॥१५॥

The omnipresent God does not receive the virtue or sin of anyone. Knowledge is enveloped in ignorance; hence it is that beings are constantly falling a prey to delusion. (15)

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्॥ १६॥

परन्तु जिनका वह अज्ञान परमात्मा के तत्त्वज्ञान द्वारा नष्ट कर दिया गया है, उनका वह ज्ञान सूर्य के सदृश उस सच्चिदानन्दघन परमात्मा को प्रकाशित कर देता है। ॥१६॥

In the case, however, of those whose said ignorance has been set aside by true knowledge of God, that wisdom shining like the sun reveals the supreme. (16)

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः॥ १७॥

जिनका मन तद्रूप हो रहा है, जिनकी बुद्धि तद्रूप हो रही है और सच्चिदानन्दघन परमात्मा में ही जिनकी निरन्तर एकीभाव से स्थिति है, ऐसे तत्परायण पुरुष ज्ञान के द्वारा पापरहित होकर अपुनरावृत्ति को अर्थात परम गति को प्राप्त होते हैं। ॥१७॥

Those whose mind and intellect are wholly merged in Him, who remain constantly established in identity with Him, and have finally become one with Him, their sins being wiped out by wisdom, reach the state whence there is no return. (17)

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥ १८॥

वे ज्ञानीजन विद्या और विनययुक्त ब्राह्मण में तथा गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल में भी समदर्शी ही होते हैं। ॥१८॥

The wise look with the same eye on a Brahman endowed with learning and culture, a cow, an elephant, dog, and a pariah too. (18)

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः॥ १९॥

जिनका मन समभाव में स्थित है, उनके द्वारा इस जीवित अवस्था में ही सम्पूर्ण संसार जीत लिया गया है, क्योंकि सच्चिदानन्दघन परमात्मा निर्दोष और सम है, इससे वे सच्चिदानन्दघन परमात्मा में ही स्थित हैं। ॥१९॥

Even here is the mortal plane conquered by those whose mind is established in unity; since the Absolute is untouched by evil and knows no distinction, hence they are established in the Eternal. (19)

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम् ।
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थित: ॥२०॥

जो पुरुष प्रिय को प्राप्त होकर हर्षित नहीं हो और अप्रिय को प्राप्त होकर उद्विग्न न हो, वह स्थिरबुद्धि संशयरहित ब्रह्मवेत्ता पुरुष सच्चिदनन्दघन परब्रह्म परमात्मा में एकीभाव से नित्य स्थित है । ॥२०॥

He who, with reason firm and free from doubt, rejoices not on obtaining what is pleasant and does not feel perturbed on meeting with the unpleasant, that knower of Brahma lives eternally in identity with Brahma. (20)

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम् ।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ॥२१॥

बाहरके विषयों में आसक्ति रहित अन्तः करणवाला साधक आत्मा में स्थित जो ध्यानजनित सात्त्विक आनन्द है, उसको प्राप्त होता है, तदनन्तर वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा के ध्यानरूप योग में अभिन्न भाव से स्थित पुरूष अक्षय आनन्द का अनुभव करता है । ॥२१॥

He whose mind remains unattached to sense-objects. derives through meditation the Sattvic joy which dwells in the mind; then that Yogi, having completely identified himself through meditation with Brahma, enjoys eternal Bliss. (21)

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥ २२॥

जो ये इन्द्रिय तथा विषयों के संयोग से उत्पन्न होनेवाले सब भोग हैं, यद्यपि विषयी पुरुषों को सुखरूप भासते हैं तो भी निःसन्देह दुःख के ही हेतु हैं और आदि-अन्त वाले अर्थात् अनित्य हैं। इसलिये हे अर्जुन! बुद्धिमान् विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता । ॥२२॥

The pleasures which are born of sense-contacts are verily a source of suffering only (though appearing as enjoyable to worldly-minded people). They have a beginning and an end (they come and go). Arjuna, it is for this reason that a wise man does not indulge in them. (22)

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात् ।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥ २३॥

जो साधक इस मनुष्य शरीर में, शरीर का नाश होनेसे पहले-पहले ही काम-क्रोध से उत्पन्न होने वाले वेग को सहन करने में समर्थ हो जाता है, वही पुरुष योगी है और वही सुखी है । ॥२३॥

He alone who is able to stand, in this very life before casting off this body, the urges of lust and anger is a Yogi; and he alone is a happy man. (23)

योऽन्तः सुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥ २४॥

जो पुरुष अन्तरात्मा में ही सुखवाला है, आत्मा में ही रमण करनेवाला है तथा जो आत्मा में ही ज्ञानवाला है, वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा के साथ एकीभाव को प्राप्त सांख्ययोगी शान्त ब्रह्म को प्राप्त होता है । ॥२४॥

He who is happy within himself, enjoys within himself the delight of the soul, and even so is illumined by the inner light (light of the soul), such a Yogi (Sāṅkhyayogi) identified with Brahmā attains Brahmā, who is all Peace. (24)

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥ २५॥

जिनके सब पाप नष्ट हो गये हैं, जिनके सब संशय ज्ञान के द्वारा निवृत्त हो गये हैं, जो सम्पूर्ण प्राणियों के हित में रत हैं और जिनका जीता हुआ मन निश्चल भाव से परमात्मा में स्थित है, वे ब्रह्मवेत्ता पुरुष शान्त ब्रह्म को प्राप्त होते हैं । ॥२५॥

The seers whose sins have been wiped out, whose doubts have been dispelled by Knowledge, whose disciplined mind is firmly established in God and who are actively engaged in the service of all beings, attain Brahma, who is all peace. (25)

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥ २६॥

काम-क्रोध से रहित, जीते हुए चित्त वाले, परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार किये हुए ज्ञानी पुरुषों के लिये सब ओर से शान्त परब्रह्म परमात्मा ही परिपूर्ण हैं । ॥२६॥

To those wise men who are free from lust and anger, who have subdued their mind and have realized God, Brahma, the abode of eternal peace, is present all round. (26)

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः ।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥ २७॥
यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥ २८॥

बाहर के विषयभोगों को न चिन्तन करता हुआ बाहर ही निकालकर और नेत्रों की दृष्टि को भृकुटी के बीचमें स्थित करके तथा नासिका में विचरने वाले प्राण और अपानवायु को सम करके, जिसकी इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि जीती हुई हैं, ऐसा जो मोक्षपरायण मुनि इच्छा, भय और क्रोध से रहित हो गया है, वह सदा मुक्त ही है । ॥२७-२८॥

Shutting out all thoughts of external enjoyments, with the gaze fixed on all the space between the eye-brows, having regulated the Prāṇa (outgoing) and the Apāna (ingoing) breaths flowing within the nostrils, he who has brought his senses, mind and intellect under control, -- such a contemplative soul intent on liberation and free from desire, fear and anger, is ever liberated. (27,28)

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ।। २९ ।।

मेरा भक्त मुझ को सब यज्ञ और तपों का भोगनेवाला, सम्पूर्ण लोकों के ईश्वरों का भी ईश्वर तथा सम्पूर्ण भूतप्राणियों का सुहृद् अर्थात् स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी, ऐसा तत्त्वसे जानकर शान्ति को प्राप्त होता है। ।।२९।।

Having known Me in reality as the enjoyer of all sacrifices and austerities, the supreme Lord of all the worlds, and the disinterested friend of all beings, My devotee attains peace. (29)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मसंन्यासयोगो
नाम पञ्चमोऽध्याय: ।।५।।

ॐ

।। ॐ श्रीकृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ।।

अथ श्रीमद्भगवद्गीता

अथ षष्ठोऽध्याय:

ŚRĪMAD BHAGAVAD GĪTĀ

CHAPTER VI

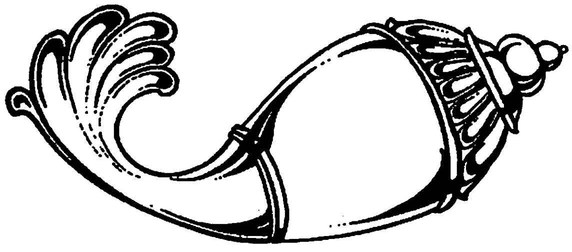

अथ षष्ठोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच ।
अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ।। १ ।।

श्रीभगवान् बोले--जो पुरुष कर्मफल का आश्रय न लेकर करने योग्य कर्म करता है, वह संन्यासी तथा योगी है, और केवल अग्नि का त्याग करने वाला संन्यासी नहीं है तथा केवल क्रियाओं का त्याग करनेवाला योगी नहीं है । ।।१।।

Śri Bhagavàn said: He who does his duty without expecting the fruit of actions is a Sannyāsi (Sānkhyayogi) and a Yogi (Karmayogi) both. He is no Sannyāsi (renouncer) who has merely renounced the sacred fire; even so he is no Yogi, who has merely given up all activity. (1)

यं सन्न्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव ।
न ह्यसन्न्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन ।। २ ।।

हे अर्जुन! जिसको संन्यास ऐसा कहते हैं, उसीको तू योग जान क्योंकि संकल्पों का त्याग न करने वाला कोई भी पुरुष योगी नही होता । ।।२।।

Arjuna, you must know that what they call Sannyàsa is no other than Yoga; for none becomes a Yogi, who has not given up thoughts of the world. (2)

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ।। ३ ।।

योग में आरुढ़ होने की इच्छावाले मननशील पुरुष के लिये योग की प्राप्ति में निष्काम भाव से कर्म करना ही हेतु कहा जाता है और योगारूढ हो जानेपर उस योगारूढ पुरुष का जो सर्वसंकल्पों का अभाव है वही कल्याणमें हेतु कहा जाता है । ॥३॥

To the contemplative soul who desires to climb to the heights of karmayoga, disinterested action is spoken of as the stepping-stone; for the same man when he is established in Yoga, absence of all thoughts of the world is said to be the way to blessedness (3)

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ।
सर्वसंकल्पसन्न्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥ ४॥

जिस काल में न तो इन्द्रियों के भोगों में और न कर्मों मे ही आसक्त होता है, उस काल में सर्वसंकल्पों का त्यागी पुरुष योगारूढ कहा जाता है । ॥४॥

When a man ceases to have any attachment either for the objects of senses or for actions, and has renounced all thoughts of the world, he is said to have climbed to the heights of Yoga. (4)

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥ ५॥

अपने द्वारा अपना संसार-समुद्र से उद्धार करें और अपने को अधोगति में न डाले, क्योंकि यह मनुष्य आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है । ॥५॥

One should lift oneself by one's own efforts and should not degrade oneself; for one's own self is one's friend and one's own self is one's enemy. (5)

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ।। ६ ।।

जिस जीवात्मा द्वारा मन और इन्द्रियों सहित शरीर जीता हुआ है, उस जीवात्मा का तो वह आप ही मित्र है, और जिसके द्वारा मन तथा इन्द्रियों सहित शरीर नहीं जीता गया है, उसके लिये वह आप ही शत्रु के सदृश शत्रुता में बर्तता है । ।।६।।

One's own self is the friend of the soul by whom the lower self (consisting of the mind, senses and body) has been conquered; even so the very self of him who has not conquered his lower self behaves antagonistically like an enemy. (6)

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ।। ७ ।।

सरदी-गरमी और सुख-दुःखादि में तथा मान और अपमान में जिसके अन्तःकरण की वृत्तियाँ भली-भाँति शान्त हैं, ऐसे स्वाधीन आत्मावाले पुरुष के ज्ञान में सच्चिदान्दधन परमात्मा सम्यक् प्रकार से स्थित है, अर्थात् उसके ज्ञान में परमात्मा के सिवाय अन्य कुछ है ही नहीं। ।।७।।

The Supreme Spirit is rooted in the knowledge of the self-controlled man whose mind is perfectly serene in the midst of pairs of opposites, such as cold and heat, joy and sorrow, and honour and ignominy. (7)

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।। ८ ।।

जिसका अन्तःकरण ज्ञान-विज्ञान से तृप्त है, जिसकी स्थिति विकाररहित है, जिसकी इन्द्रियाँ भलीभाँति जीती हुई हैं और जिसके लिये मिट्टी, पत्थर और सुवर्ण समान है, वह योगी युक्त अर्थात् भगवत्-प्राप्त है, ऐसे कहा जाता है । ॥८॥

The yogi whose mind is sated with jñāna (Knowledge of Nirguna Brahmā) and Vijñāna (Knowledge of manifest Divinity), who is unmoved under all circumstances, whose senses are completely mastered, and to whom earth, stone and gold are all alike, is spoken of as a God-realized soul.(8)

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥ ९॥

सुहृद्, मित्र, वैरी, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेष्य और बन्धुगणों में, धर्मात्माओं में और पापियों में भी समान भाव रखने वाला अत्यन्त श्रेष्ठ है । ॥९॥

He who looks upon well-wishers and neutrals as well as mediators, friends and foes, relatives and objects of hatred, the virtuous and the sinful with the same eye, stands supreme. (9)

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः॥ १०॥

मन और इन्द्रियों सहित शरीर को वशमें रखने वाला, आशारहित और संग्रहरहित योगी अकेला ही एकान्त स्थान में स्थित होकर आत्मा को निरन्तर परमात्मा में लगावे । ॥१०॥

Living in seclusion all by himself, the yogi who has controlled his mind and body, and is free from desires and void of possessions, should constantly engage his mind in meditation. (10)

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ।। ११।।

शुद्ध भूमि में, जिसके ऊपर क्रमशः कुशा, मृगछाला और वस्त्र बिछे हैं, जो न बहुत ऊँचा है और न बहुत नीचा, ऐसे अपने आसन को स्थिर स्थापन करके — ।।११।।

Having firmly placed his seat in a spot which is free from dirt and other impurities with the sacred Kuśa grass, a deerskin and a cloth spread thereon one below another (kuśa below, deerskin in the middle and cloth uppermost), neither very high nor very low. (11)

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ।। १२।।

उस आसनपर बैठकर चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में रखते हुए मन को एकाग्र करके अन्तःकरण की शुद्धिके लिये योग का अभ्यास करें । ।।१२।।

And occupying that seat, concentrating the mind and controlling the functions of the mind and senses, he should practise yoga for self-purification. (12)

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ।। १३।।

काया, सिर और गले को समान एवं अचल धारण कर के और स्थिर होकर, अपनी नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि जमाकर, अन्य दिशाओं को न देखता हुआ— ।।१३।।

Holding the trunk, head and neck straight and steady, remaining firm and fixing the gaze on the tip of his nose, without looking in other direction. (13)

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥ १४॥

ब्रह्मचारी के व्रतमें स्थित, भयरहित तथा भलीभाँति शान्त अन्तःकरण वाला सावधान योगी मन को रोककर मुझमें चित्तवाला और मेरे परायण होकर स्थित होवे । ॥१४॥

Firm in the vow of complete chastity and fearless, keeping himself perfectly calm and with the mind held in restraint and fixed on Me, the vigilant yogi should sit absorbed in Me. (14)

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥ १५॥

वशमें किये हुए मनवाला योगी इस प्रकार आत्मा को निरन्तर मुझ परमेश्वर के स्वरूप में लगाता हुआ मुझमें रहनेवाली परमानन्द की पराकाष्ठारूप शान्ति को प्राप्त होता है। ॥१५॥

Thus constantly applying his mind to Me, the yogi of disciplined mind attains the everlasting Peace, consisting of supreme bliss, which abides in Me. (15)

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन॥ १६॥

हे अर्जुन ! यह योग न तो बहुत खाने वाले का, न बिल्कुल न खानेवाले का, न बहुत शयन करने के स्वभाव वाले का और न सदा जागने वाले का ही सिद्ध होता है । ॥१६॥

Arjuna, this yoga is neither for him who overeats, nor for him who observes a complete fast; it is neither for him who is given to too much sleep, nor even for him who is ceaselessly awake. (16)

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ।। १७ ।।

दुःखों का नाश करने वाला योग तो यथायोग्य आहार-विहार करनेवाले का, कर्मों में यथायोग्य चेष्टा करने वाले का और यथायोग्य सोने तथा जागने वाले का ही सिद्ध होता है । ।।१७।।

Yoga, which rids one of woe, is accomplished only by him who is regulated in diet and recreation, regulated in performing actions, and regulated in sleep and wakefulness. (17)

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ।। १८ ।।

अत्यन्त वश में किया हुआ चित्त जिस काल में परमात्मा में ही भलीभाँति स्थित हो जाता है, उस काल में सम्पूर्ण भोगोंसे स्पृहारहित पुरुष योगयुक्त है, ऐसा कहा जाता है । ।।१८।।

When the mind which is thoroughly disciplined gets riveted on God alone, then the person who is free from yearning for all enjoyment is said to be established in yoga. (18)

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता ।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ।। १९ ।।

जिस प्रकार वायुरहित स्थान में स्थित दीपक चलायमान नही होता, वैसी ही उपमा परमात्मा के ध्यानमे लगे हुए योगी के जीते हुए चित्त की कही गयी है । ॥१९॥

As a light does not flicker in a windless place, such is stated to be the picture of the disciplined mind of the yogi practising meditation on God. (19)

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥ २०॥

योग के अभ्यास से निरुद्ध चित्त जिस अवस्था में उपराम हो जाता है, और जिस अवस्था में परमात्मा के ध्यान से शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि द्वारा परमात्मा को साक्षात् करता हुआ सच्चिदानन्दघन परमात्मा में ही सन्तुष्ट रहता है । ॥२०॥

The state in which, curbed through the practice of Yoga, the mind becomes still, and in which, realizing God through subtle reason (purified by meditation on God) the soul rejoices only in God. (20)

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥ २१॥

इन्द्रियों से अतीत, केवल शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि द्वारा ग्रहण करने योग्य जो अनन्त आनन्द है उसको जिस अवस्था में अनुभव करता है और जिस अवस्था में स्थित यह योगी परमात्मा के स्वरूप से विचलित होता ही नहीं । ॥२१॥

Nay, in which the soul experiences the eternal and super-sensuous joy which can be apprehended only through the subtle and purified intellect, and wherein established the said yogi moves not from Truth on any account. (21)

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥ २२॥

परमात्मा की प्राप्तिरूप जिस लाभ को प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता और परमात्मा प्राप्तिरूप जिस अवस्था में स्थित योगी बड़े भारी दुःख से भी चलायमान नहीं होता । ॥२२॥

And having obtained which he does not reckon any other gain as greater than that, and established in which he is not shaken even by the heaviest of sorrows. (22)

तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥ २३॥

जो दुःखरूप संसार के संयोग से रहित है तथा जिसका नाम योग है; उसको जानना चाहिये। वह योग न उकताये हुए अर्थात् धैर्य और उत्साहयुक्त चित्त से निश्चयपूर्वक करना कर्तव्य है । ॥२३॥

That state, called yoga, which is free from the contact of sorrow (in the form of transmigration), should be known. Nay, this yoga should be resolutely practised which an unwearied mind. (23)

संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ॥ २४॥

संकल्प से उत्पन्न होनेवाली सम्पूर्ण कामनाओं को निःशेषरूप से त्यागकर और मन के द्वारा इन्द्रियों के समुदाय को सभी ओर से भलीभाँति रोककर— ॥२४॥

Completely renouncing all desires arising from thoughts of the world, and fully restraining the whole pack of the senses from all sides by the time. (24)

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्॥ २५॥

क्रम-क्रम से अभ्यास करता हुआ उपरति को प्राप्त हो तथा धैर्ययुक्त बुद्धि के द्वारा मन को परमात्मा में स्थित करके परमात्मा के सिवा और कुछ भी चिन्तन न करे । ॥२५॥

He should through gradual practice attain tranquillity; and fixing the mind on God through reason controlled by steadfastness, be should not think of anything else. (25)

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ २६॥

यह स्थिर न रहनेवाला और चञ्चल मन जिस-जिस शब्दादि विषय के निमित्त से संसारमें विचरता है, उस-उस विषय से रोककर यानी हटाकर इसे बार-बार परमात्मा में ही निरुद्ध करें । ॥२६॥

Drawing back the restless and fidgety mind from all those objects after which it runs, he should repeatedly fix it on God. (26)

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥ २७॥

क्योंकि जिसका मन भली प्रकार शान्त है, जो पापसे रहित है और जिसका रजोगुण शान्त हो गया है, ऐसे इस सच्चिदानन्दघन ब्रह्म के साथ एकीभाव हुए योगी को उत्तम आनन्द प्राप्त होता है । ॥२७॥

For to the yogi whose mind is perfectly serene who is sinless, whose passion is subdued, and who is identified with Brahmā, the embodiment of Truth, Knowledge and Bliss, supreme happiness comes as a matter of course. (27)

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥ २८॥

वह पापरहित योगी इस प्रकार निरन्तर आत्मा को परमात्मा में लगाता हुआ सुखपूर्वक परब्रह्म परमात्मा की प्राप्तिरूप अनन्त आनन्द का अनुभव करता है । ॥२८॥

The sinless yogi, thus uniting his self constantly with God, easily enjoys the eternal Bliss of oneness with Brahma. (28)

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥ २९॥

सर्वव्यापी अनन्त चेतन में एकीभाव से स्थितिरूप योग से युक्त आत्मावाला तथा सबमें समभाव से देखनेवाला योगी आत्मा को सम्पूर्ण भूतों में स्थित और सम्पूर्ण भूतों को आत्मा में कल्पित देखता है । ॥२९॥

The yogi who is united in identity with the all-pervading, infinite conciousness, and sees unity everywhere, beholds the Self present in all beings and all beings as assumed in the Self. (29)

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥ ३०॥

जो पुरुष सम्पूर्ण भूतों में सबके आत्मरूप मुझ वासुदेव को ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतों को मुझ वासुदेव के अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मै अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता। ॥३०॥

He who sees Me (the Universal Self) present in all beings and all beings, existing within Me, never loses sight of Me, and I never lose sight of him. (30)

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥ ३१॥

जो पुरुष एकीभाव में स्थित होकर सम्पूर्ण भूतोमें आत्मरूप से स्थित सच्चिदानन्दघन वासुदेव को भजता है, वह योगी सब प्रकार से बरतता हुआ भी मुझमें ही बरतता है । ॥३१॥

The yogi who is established in union with Me, and worships Me as residing in all beings (as their very Self); abides in Me, no matter what he does. (31)

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥ ३२॥

हे अर्जुन ! जो योगी अपनी भाँति सम्पूर्ण भूतों में सम देखता है और सुख अथवा दुःख को भी सबमें सम देखता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है । ॥३२॥

Arjuna, he who looks on all as one, on the analogy of his own self, and looks upon the joy and sorrow of all with a similar eye, – such a yogi is deemed the highest of all. (32)

अर्जुन उवाच ।
योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ।
एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिराम्॥ ३३॥

अर्जुन बोले - हे मधुसूदन ! जो यह योग आपने सम भाव से कहा है, मनके चञ्चल होनेसे मैं इसकी नित्य स्थिति को नहीं देखता हूँ । ॥३३॥

Arjuna said: Kṛṣṇa, owing to restlessness of mind I do not perceive the stability of this yoga in the form of equability, which You have just spoken of. (33)

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥ ३४॥

क्योंकि हे श्रीकृष्ण ! यह मन बड़ा चञ्चल, प्रमथन स्वभाव वाला, बड़ा दृढ़ और बलवान् है। इसलिये उसका वशमें करना मैं वायुके रोकने की भाँति अत्यन्त दुष्कर मानता हूँ । ॥३४॥

For, Kṛṣṇa, the mind is very unsteady, turbulent, tenacious and powerful; therefore, I consider it as difficult to control as the wind. (34)

श्रीभगवानुवाच ।
असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ ३५॥

श्रीभगवान् बोले--हे महाबाहो ! निःसन्देह मन चंचल और कठिनता से वश में होने वाला है; परन्तु हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! यह अभ्यास और वैराग्य से वश में होता है । ॥३५॥

Śri Bhagavān said: The mind is restless no doubt, and difficult to curb, Arjuna; but it can be brought under control by repeated practice (of meditation) and by the exercise of dispassion, O son of Kunti. (35)

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः॥ ३६॥

जिसका मन वश में किया हुआ नहीं है, ऐसे पुरुष द्वारा योग दुष्प्राप्य है और वश में किये हुए मन-वाले प्रयत्नशील पुरुष द्वारा साधन से उसका प्राप्त होना सहज है--यह मेरा मत है । ॥३६॥

Yoga is difficult of achievement for one whose mind is not subdued; by him, however, who has the mind under control, and is ceaselessly striving, it can be easily attained through practice. Such is My conviction. (36)

अर्जुन उवाच ।
अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः ।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति ॥ ३७ ॥

अर्जुन बोले—हे श्रीकृष्ण ! जो योग में श्रद्धा रखनेवाला हैः किन्तु संयमी नहीं है, इस कारण जिसका मन अन्तकाल में योग से विचलित हो गया है, ऐसा साधक योग की सिद्धि को अर्थात् भगवत्साक्षात्कार को न प्राप्त होकर किस गति को प्राप्त होता है । ॥३७॥

Arjuna said: Kṛṣṇa, what becomes of the soul who, though endowed with faith, has not been able to subdue his passions, and whose mind is therefore diverted from yoga (at the time of death), and who thus fails to reach perfection in yoga (God-Realization)? (37)

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥ ३८ ॥

हे महाबाहो! क्या वह भगवत्प्राप्ति के मार्ग में मोहित और आश्रयरहित पुरुष छिन्न-भिन्न बादल की भाँति दोनों ओर से भ्रष्ट होकर नष्ट तो नहीं हो जाता? ॥३८॥

Kṛṣṇa, strayed from the path leading to God-Realization and without anything to stand upon, is he not lost like the torn cloud, deprived of both God-Realization and heavenly enjoyment ? (38)

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते ॥ ३९॥

हे श्रीकृष्ण ! मेरे इस संशय को सम्पूर्ण रूप से छेदन करने के लिये आप ही योग्य हैं, क्योंकि आपके सिंवा दूसरा इस संशय का छेदन करने वाला मिलना सम्भव नहीं है । ॥३९॥

Kṛṣṇa, it behoves You to slash this doubt of mine completely; for none other than You can be found, who can clear this doubt (39)

श्रीभगवानुवाच ।
पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥ ४०॥

श्रीभगवान् बोले—हे पार्थ ! उस पुरुष का न तो इस लोक में नाश होता है और न परलोक में ही। क्योंकि हे प्यारे ! आत्मोद्धार के लिये अर्थात् भगवत्प्राप्ति के लिये कर्म करने वाला कोई भी मनुष्य दुर्गति को प्राप्त नहीं होता । ॥४०॥

Śri Bhagavān said: Dear Arjuna, there is no fall for him either here or hereafter. For none who strives for self-redemption (i.e. God-Realization) ever meets with evil destiny (40)

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥ ४१॥

योगभ्रष्ट पुरुष पुण्यवानों के लोकों को अर्थात् स्वर्गादि उत्तम लोकों को प्राप्त होकर, उनमें बहुत वर्षों तक निवास करके फिर शुद्ध आचरणवाले श्रीमान् पुरुषों के घरमें जन्म लेता है । ॥४१॥

He who has fallen from yoga, obtains the higher worlds, (heaven etc.) to which men of meritorious deeds alone are entitled, and having resided there for countless years, takes birth in the house of pious and wealthy men. (41)

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ।। ४२।।

अथवा वैराग्यवान् पुरुष उन लोकों में न जाकर ज्ञानवान् योगियों के ही कुलमें जन्म लेता है। परन्तु इस प्रकार का जो यह जन्म है सो संसार में निःसन्देह अत्यन्त दुर्लभ है । ।।४२।।

Or (if he is possessed of dispassion) he is born in the family of enlightened yogis; but such a birth in this world is very difficult to obtain. (42)

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ।। ४३।।

वहाँ उस पहले शरीर में संग्रह किये हुए बुद्धि-संयोग को अर्थात समबुद्धिरूप योग के संस्कारों को अनायास ही प्राप्त हो जाता है और हे कुरुनन्दन! उसके प्रभावसे वह फिर परमात्मा की प्राप्तिरूप सिद्धि के लिये पहलेसे भी बढ़कर प्रयत्न करता है । ।।४३।।

Arjuna, he automatically regains in that birth the spiritual insight of his previous birth; and through that he strives, harder than ever, for perfection (in the form of God Realization). (43)

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ।। ४४।।

वह श्रीमानों के घर में जन्म लेने वाला योगभ्रष्ट पराधीन हुआ भी उस पहले के अभ्यास से ही निःसन्देह भगवान् की ओर आकर्षित किया जाता है, तथा समबुद्धिरूप योग का जिज्ञासु भी वेद में कहे हुए सकाम कर्मों के फल को उल्लंघन कर जाता है। ॥४४॥

The other one (who takes birth in a rich family), though under the sway of his senses, feels drawn towards God by force of the habit acquired in his previous birth; nay, even the seeker of enlightenment on yoga (in the form of even-mindedness) transcends the fruit of actions performed with some interested motive as laid down in the Vedas. (44)

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥ ४५॥

परन्तु प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करने वाला योगी तो पिछले अनेक जन्मों के संस्कारबल से इसी जन्म में संसिद्ध होकर सम्पूर्ण पापों से रहित हो फिर तत्काल ही परमगति को प्राप्त हो जाता है। ॥४५॥

The yogi, however, who diligently take up the practice attains perfection in this very life with the help of latencies of many births, and being thoroughly purged of sin, forthwith reaches the supreme state. (45)

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥ ४६॥

योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ है, शास्त्रज्ञानियों से भी श्रेष्ठ माना गया है और सकाम कर्म करने वालों से भी योगी श्रेष्ठ है; इससे हे अर्जुन! तू योगी हो। ॥४६॥

The yogi is superior to the ascetics; he is regarded as superior even to those versed in sacred lore. The yogi is also superior to those who perform action with some interested motive. Therefore, Arjuna, do you become a yogi. (46)

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥ ४७ ॥

सम्पूर्ण योगियों में भी जो श्रद्धावान् योगी मुझ में लगे हुए अन्तरात्मा से मुझको निरन्तर भजता है, वह योगी मुझे परम श्रेष्ठ मान्य है । ॥४७॥

Of all yogis, again, he who devoutly worships Me with his mind focussed on Me is considered by Me to be the best yogi. (47)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे आत्मसंयमयोगो
नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

अथ श्रीमद्भगवद्गीता

अथ सप्तमोऽध्यायः

ŚRĪMAD BHAGAVAD GĪTĀ

CHAPTER VII

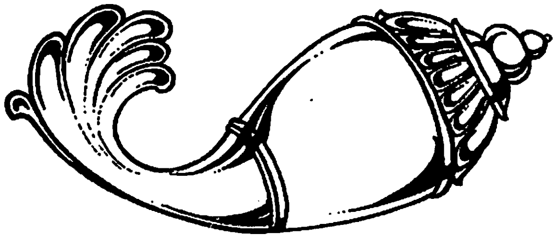

अथ सप्तमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच ।
मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः ।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥ १॥

श्रीभगवान् बोल—हे पार्थ ! अनन्यप्रेम से मुझ में आसक्तचित्त तथा अनन्यभाव से मेरे परायण होकर योग में लगा हुआ तू जिस प्रकार से सम्पूर्ण विभूति, बल, ऐश्वर्यादि गुणोंसे युक्त, सबके आत्मरूप मुझको संशयरहित जानेगा, उसको सुन । ॥१॥

Śri Bhagavān said: Arjuna, now listen how with the mind attached to Me (through exclusive love) and practising yoga with absolute dependence on Me, you will know Me (the Repository of all power, strength and glory and other attributes, the Universal soul) in entirety and without any shadow of doubt (1)

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ २॥

मैं तेरे लिये इस विज्ञानसहित तत्त्वज्ञान को सम्पूर्णतया कहूँगा, जिसको जानकर संसारमें फिर और कुछ भी जाननेयोग्य शेष नहीं रह जाता॥॥२॥

I shall unfold to you in its entirety this wisdom (Knowledge of God in His absolute formless aspect) along with the Knowledge of the qualified aspect of God (both with form and without form), having known which nothing else remains yet to be known in this world. (2)

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥ ३॥

हजारों मनुष्यों में कोई एक मेरी प्राप्ति के लिये यत्न करता है और उन यत्न करनेवाले योगियों में भी कोई एक मेरे परायण होकर मुझको तत्त्वसे अर्थात् यथार्थरूपसे जानता है। ॥३॥

Hardly one among thousands of men strives to realize Me; of those striving yogis, again, some rare one (devoting himself exclusively to Me) knows Me in reality. (3)

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥ ४॥
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥ ५॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार भी-इस प्रकार यह आठ प्रकारसे विभाजित मेरी प्रकृति है। यह आठ प्रकार के भेदोंवाली तो अपरा अर्थात् मेरी जड प्रकृति है और हे महाबाहो ! इससे दूसरी को, जिससे यह सम्पूर्ण जगत् धारण किया जाता है, मेरी जीवरूपा परा अर्थात् चेतन प्रकृति जान। ॥४-५॥

Earth, water, fire, air, ether, mind, reason and also ego; these constitute My nature eightfold divided. This indeed is My lower (material) nature; the other than this, by which the whole universe is sustained, know it to be My higher (or spiritual) nature in the form of Jiva (the life-principle), O Arjuna. (4,5)

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा॥ ६॥

हे अर्जुन ! तू ऐसा समझ कि सम्पूर्ण भूत इन दोनों प्रकृतियों से ही उत्पन्न होनेवाले हैं और मैं सम्पूर्ण जगत् का प्रभव तथा प्रलय हूँ, अर्थात् सम्पूर्ण जगत् का मूल कारण हूँ। ॥६॥

Arjuna, know that all beings have evolved from this two fold Prakrti, and that I am the source of the entire creation, and into Me again it disappears, (6)

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनंजय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ।। ७।।

हे धनञ्जय ! मुझसे भिन्न दूसरा कोई भी परम कारण नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् सूत्रमें सूत्रके मणियों के सदृश मुझमें गुँथा हुआ है । ।।७।।

There is nothing else besides Me, Arjuna. Like clusters of yarn-beads formed by knots on a thread, all this is threaded on Me. (7)

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ।। ८।।

हे अर्जुन ! मै जलमें रस हूँ, चन्द्रमा और सूर्य में प्रकाश हूँ, सम्पूर्ण वेदों मे ओंकार हूँ, आकाश में शब्द और पुरुषों मे पुरुषत्व हूँ । ।।८।।

Arjuna, I am the sapidity in water and the light of the moon and the sun; I am the sacred syllable OM in all the Vedas, the sound in ether, and the manliness in men (8)

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु।। ९।।

मै पृथ्वी में पवित्रगन्ध और अग्निमें तेज हूँ तथा सम्पूर्ण भूतों में उनका जीवन हूँ और तपस्वियों में तप हूँ । ।।९।।

I am the pure odour (the subtle principle of odour) in the earth and the brilliance in fire; nay, I am the life in all beings and the austerity in men of ascetics. (9)

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥ १०॥

हे अर्जुन ! तू सम्पूर्ण भूतोंका सनातन बीज मुझ को ही जान! मैं बुद्धिमानों की बुद्धि और तेजस्वियों का तेज हूँ । ॥१०॥

Arjuna, know Me the eternal seed of all beings. I am the intelligence of the intelligent; the glory of the glorious am I. (10)

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥ ११॥

हे भरतश्रेष्ठ ! मै बलवानों का आसक्ति और कामनाओं से रहित बल अर्थात् सामर्थ्य हूँ और सब भूतोमें धर्मके अनुकूल अर्थात् शास्त्रके अनुकूल काम हूँ । ॥११॥

Arjuna, of the mighty I am the might, free from passion and desire; in beings I am the sexual desire not conflicting with virtue or scriptural injunctions. (11)

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि॥ १२॥

और भी जो सत्त्वगुण से उत्पन्न होनेवाले भाव हैं और जो रजोगुण से तथा तमोगुण से होनेवाले भाव हैं, इन सबको तू 'मुझसे ही होनेवाले हैं' ऐसा जान। परन्तु वास्तवमें उनमें मैं और वे मुझमें नहीं है । ॥१२॥

Whatever other entities there are, born of Sattva (the quality of goodness), and those that are born of Rajas (the principle of activity) and Tamas (the principle of inertia), know them all as evolved from Me alone. In reality, however, neither do I exist in them, nor they in Me. (12)

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥ १३॥

गुणों के कार्यरूप सात्त्विक, राजस और तामस—इन तीनों प्रकार के भावोंसे यह सारा संसार – प्राणि समुदाय मोहित हो रहा है, इसीलिये इन तीनों गुणोंसे परे मुझ अविनाशी को नहीं जानता । ॥१३॥

The whole of this creation is deluded by these objects evolved from the three modes of Prakṛti-Sattva, Rajas and Tamas; that is why the world fails to recognize Me, standing apart from these and imperishable. (13)

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥ १४॥

क्योंकि यह अलौकिक अर्थात् अति अद्भुत त्रिगुणमयी मेरी माया बड़ी दुस्तर है; परन्तु जो पुरुष केवल मुझको ही निरन्तर भजते हैं वे इस माया को उल्लंघन कर जाते हैं अर्थात् संसार से तर जाते हैं । ॥१४॥

For this most wonderful Māya (veil) of Mine, consisting of the three Guṇas (modes of Nature), is extremely difficult to break through, those, however, who constantly adore Me alone are able to cross it. (14)

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥ १५॥

माया के द्वारा जिनका ज्ञान हरा जा चुका है ऐसे आसुरी–स्वभाव को धारण किये हुए मनुष्यों में नीच, दूषित कर्म करनेवाले मूढ़लोग मुझको नहीं भजते । ॥१५॥

Those whose wisdom has been carried away by Maya, and who have embraced the demoniac nature, such foolish and vile men of evil deeds do not adore Me. (15)

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ १६॥

हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन ! उत्तम कर्म करनेवाले आर्त्, जिज्ञासु अर्थार्थी, और ज्ञानी-ऐसे चार प्रकारके भक्तजन मुझको भजते हैं । ॥१६॥

Four types of devotees of noble deeds worship Me, Arjuna, the seeker after worldly possessions, the afflicted, the seeker for knowledge, and the man of wisdom, O best of Bharatas. (16)

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥ १७

उनमे नित्य मुझमें एकीभाव से स्थित अनन्य प्रेमभक्तिवाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम है, क्योंकि मुझको तत्त्वसे जाननेवाले ज्ञानी को मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्रिय है । ॥१७॥

Of these the best is the man of wisdom, ever established in identity with Me and possessed of exclusive devotion. For I am extremely dear to the wise man (who knows Me in reality), and he is extremely dear to Me. (17)

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्॥ १८॥

ये सभी उदार हैं, परन्तु ज्ञानी तो साक्षात् मेरा स्वरूप ही है--ऐसा मेरा मत है, क्योंकि वह मद्गत मन-बुद्धिवाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम गतिस्वरूप मुझमें ही अच्छी प्रकार स्थित है । ॥१८॥

Indeed all these are noble, but the men of wisdom is My very self; such is My view. For such a devotee, who has his mind and intellect merged in Me, is firmly established in Me alone, the highest goal. (18)

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ।। १९ ।।

बहुत जन्मोंके अन्तके जन्ममें तत्त्वज्ञानको प्राप्त पुरुष, सब कुछ वासुदेव ही है—इस प्रकार मुझको भजता है, वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है। ।।१९।।

In the very last of all births the enlightened soul worships Me, realizing that all this is God. Such a great soul is very rare. (19)

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया । २० ।।

उन-उन भोगों की कामनाद्वारा जिनका ज्ञान हरा जा चुका है वे लोग अपने स्वभाव से प्रेरित होकर उस-उस नियम को धारण करके अन्य देवताओं को भजते हैं अर्थात् पूजते हैं । ।।२०।।

Those whose wisdom had been carried away by various desires, being prompted by their own nature, worship other deities adopting rules relating to each. (20)

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ।। २१।।

जो-जो सकाम भक्त जिस-जिस देवता के स्वरूप को श्रद्धासे पूजना चाहता है, उस-उस भक्तकी श्रद्धा को मै उसी देवताके प्रति स्थिर करता हूँ । ।।२१।।

Whatever celestial form a devotee (craving for some worldly object) chooses to worship with reverence, I stabilize the faith of that particular devotee in that very form. (21)

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान् ॥ २२॥

वह पुरुष उस श्रद्धा से युक्त होकर उस देवता का पूजन करता है और उस देवता से मेरेद्वारा ही विधान किये हुए उन इच्छित भोगों को निःसन्देह प्राप्त करता है । ॥२२॥

Endowed with such faith he worships that particular deity and obtains through him without doubt his desired enjoyments as ordained by Myself. (22)

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि॥ २३॥

परन्तु उन अल्प बुद्धिवालों का वह फल नाशवान् है तथा वे देवताओं को पूजने वाले देवाताओं को प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त चाहे जैसे ही भजें, अन्तमें वे मुझको ही प्राप्त होते हैं । ॥२३॥

The fruit gained by these people of small understanding, however, is perishable. The worshippers of gods attain the gods; whereas My devotees, howsoever they worship Me, eventually come to Me and Me alone. (23)

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥ २४॥

बुद्धिहीन पुरुष मेरे अनुत्तम अविनाशी परम भावको न जानते हुए मन-इन्द्रियों से परे मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्मा को मनुष्यकी भाँति जन्मकर व्यक्तिभाव को प्राप्त हुआ मानते हैं । ॥२४॥

Not knowing My unsurpassable and undecaying supreme nature, the ignorants believe Me, the supreme Spirit beyond the reach of mind and senses, the embodiment of Truth, Knowledge and Bliss, to have assumed a finite form through birth (as an ordinary human being). (24)

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥ २५

अपनी योगमाया से छिपा हुआ मै सबके प्रत्यक्ष नहीं होता, इसलिये यह अज्ञानी जनसमुदाय मुझ जन्मरहित अविनाशी परमेश्वर को नहीं जानता अर्थात् मुझ को जन्मने-मरनेवाला समझता हैं । ॥२५॥

Veiled by My Yogamāyā (devine potency), I am not manifest to all. Hence these ignorant folk fail to recognize Me, the unborn and imperishable Supreme Deity (i.e., consider Me as subject to birth and death) (25)

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥ २६॥

हे अर्जुन ! पूर्वमें व्यतीत हुए और वर्तमान में स्थित तथा आगे होनेवाले सब भूतों को मैं जानता हूँ, परन्तु मुझको कोई भी श्रद्धाभक्तिरहित पुरुष नहीं जानता । ॥२६॥

Arjuna, I know all beings, past as well as present, nay, even those that are yet to come; but none (devoid of faith and reverence) knows Me. (26)

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत ।
सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परंतप ॥ २७॥

हे भरतवंशी अर्जुन ! संसार में इच्छा और द्वेष से उत्पन्न सुख-दु:खादि द्वन्द्वरूप मोह से सम्पूर्ण प्राणी अत्यन्त अज्ञता को प्राप्त हो रहे हैं । ॥२७॥

O valiant Arjuna, through delusion in the shape of pairs of opposites (such as pleasure and pain etc.), born of desire and hatred, all living creatures in this world are falling a prey to infatuation. (27)

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रता:॥ २८॥

परन्तु निष्कामभाव से श्रेष्ठ कर्मोंका आचरण करनेवाले जिन पुरुषों का पाप नष्ट हो गया है, वे राग द्वेषजनित द्वन्द्वरूप मोहसे मुक्त दृढ़निश्चयी भक्त मुझको सब प्रकारसे भजते हैं । ॥२८॥

But those men of virtuous deeds whose sins have come to an end, being freed from delusion in the shape of pairs of opposites (born of attraction and repulsion), worship Me with a firm resolve in every way. (28)

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।
ते ब्रह्म तद्विदु: कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥ २९॥
साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदु: ।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतस:॥ ३०॥

जो मेरे शरण होकर जरा और मरणसे छूटने के लिये यत्न करते हैं, वे पुरूष उस ब्रह्मको, सम्पूर्ण अध्यात्म को, सम्पूर्ण कर्मको जानते हैं। जो पुरुष अधिभूत और अधिदैवके सहित तथा अधियज्ञके सहित (सबका आत्मरूप) मुझे अन्त कालमें भी जानते हैं वे युक्तचित्तवाले पुरुष मुझे जानते हैं अर्थात् प्राप्त हो जाते हैं । ॥२९-३०॥

They who, having taken refuge in Me, strive for deliverance from old age and death know Brahma (the Absolute), the whole Adhyātma (the totality of jivas or embodied souls), and the entire field of Karma (action) as well as my integral being, comprising Adhibhûta (the field of Matter), Adhidaiva (Brahmā) and Adhiyajna (the unmanifest Divinity dwelling in the heart of all beings as their witness). And they who, possessed of steadfast mind, know thus even at the hour of death, they too know Me alone. (29-30)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञान विज्ञान योगो
नाम सप्तमोऽध्याय: ॥७॥

॥ ॐ श्रीकृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥

अथ श्रीमद्भगवद्गीता

अथ अष्टमोऽध्यायः

ŚRĪMAD BHAGAVAD GĪTĀ

CHAPTER VIII

अथ अष्टमोऽध्याय:

अर्जुन उवाच ।
किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥ १॥

अर्जुन ने कहा—हे पुरुषोत्तम! वह ब्रह्म क्या है? अध्यात्म क्या है? कर्म क्या है ? अधिभूत नाम से क्या कहा गया है और अधिदैव किसको कहते है ? ॥१॥

Arjuna said: Kṛṣṇa, what is that Brahmā (Absolute), what is Adhyātma (Spirit), and what is Karma (Action)? What is called Adhibhuta (Matter) and what is termed as Adhidaiva (divine intelligence) ? (1)

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥ २॥

हे मधुसूदन ! यहाँ अधियज्ञ कौन है? और वह इस शरीर में कैसे है? तथा युक्त चित्तवाले पुरुषों द्वारा अन्त समय में आप किस प्रकार जानने में आते हैं? ॥२॥

Kṛṣṇa, who is Adhiyajna here and how does he dwell in the body? And how are You to be realized at the time of death by those of steadfast mind ? (2)

श्रीभगवानुवाच ।
अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥ ३॥

श्रीभगवान ने कहा—परम अक्षर 'ब्रह्म' है, अपना स्वरूप अर्थात जीवात्मा 'अध्यात्म' नाम से कहा जाता है तथा भूतों के भाव को उत्पन्न करने वाला जो त्याग है, वह 'कर्म' नाम से कहा गया है । ॥३॥

Śri Bhagavān said: The supreme Indestructible is Brahma own self (the individual soul) is called Adhyātma; and the discharge of spirits, (visarga), which brings forth the existence of beings, is called Karma (Action). (3)

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ॥ ४॥

उत्पत्ति-विनाश धर्मवाले सब पदार्थ अधिभूत है, हिरण्यमय पुरुष अधिदैव है और हे देहधारियो में श्रेष्ठ अर्जुन ! इस शरीर में मैं वासुदेव ही अन्तर्यामी रूप से अधियज्ञ हूँ । ॥४॥

All perishable objects are Adhibhūta; the shining Purusa (Brahmā) is Adhidaiva; and in this body I Myself, dwelling as the inner witness, am Adhiyajna, O Arjuna ! (4)

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥ ५॥

जो पुरुष अन्तकाल में भी मुझको ही स्मरण करता हुआ शरीर को त्यागकर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरुप को प्राप्त होता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । ॥५॥

He who departs from the body, thinking of Me alone even at the time of death, attains My state; there is no doubt about it. (5)

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥ ६॥

हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! यह मनुष्य अन्तकाल में जिस-जिस भी भाव को स्मरण करता हुआ शरीर का त्याग करता है, उस-उसको ही प्राप्त होता है, क्योंकि वह सदा उसी भाव से भावित रहा है । ॥६॥

Arjuna, thinking of whatever entity one leaves the body at the time of death, that and that alone one attains, being ever absorbed in its thought. (6)

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥ ७॥

इसलिये हे अर्जुन! तू सब समय में निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। इस प्रकार मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धि से युक्त होकर तू निःसन्देह मुझको ही प्राप्त होगा । ॥७॥

Therefore, Arjuna, think of Me at all times and fight. With mind and reason thus set on Me, you will doubtless come to Me. (7)

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ॥ ८॥

हे पार्थ! यह नियम है कि परमेश्वर के ध्यान के अभ्यासरूप योगसे युक्त, दूसरी ओर न जानेवाले चित्तसे निरन्तर चिन्तन करता हुआ मनुष्य परम प्रकाशरूप दिव्य पुरुष को अर्थात् परमेश्वर को ही प्राप्त होता है।॥८॥

Arjuna, he who with his mind disciplined through Yoga in the form of practice of meditation and thinking of nothing else, is constantly engaged in contemplation of God attains the supremely effulgent divine Puruṣa (God). (8)

कविं पुराणमनुशासितार -
मणोरणीयांसमनुस्मरेद्य : ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूप -
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥ ९॥

जो पुरुष सर्वज्ञ, अनादि, सबके नियन्ता, सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म, सबके धारण-पोषण करनेवाले, अचिन्त्यस्वरूप, सूर्यके सदृश नित्य चेतन प्रकाशरूप और अविद्या से अति परे, शुद्ध सच्चिदानन्दघन परमेश्वर का स्मरण करता है - ॥९॥

He who contemplates on the all-wise, ageless Being, the Ruler of all, subtler than the subtle, the universal sustainer, possessing a Form beyond human conception, refulgent like the sun and far beyond the darkness of ignorance. (9)

प्रयाणकाले मनसाचलेन
भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्
स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ १०॥

वह भक्तियुक्त पुरुष अन्तकाल में भी योगबल से भृकुटी के मध्य में प्राण को अच्छी प्रकार स्थापित करके फिर निश्चल मन से स्मरण करता हुआ उस दिव्यरूप परम पुरूष परमात्मा को ही प्राप्त होता है । ॥१०॥

Having by the power of Yoga firmly held the life-breath in the space between the two eyebrows even at the time of death, and then contemplating on God with a steadfast mind, full of devotion, he reaches verily that supreme divine Puruṣa(God) (10)

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं सङ्ग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥ ११॥

वेद के जाननेवाले विद्वान् जिस सच्चिदानन्दघनरूप परमपद को अविनाशी कहते हैं, आसक्तिरहित यत्नशील संन्यासी महात्माजन जिसमें प्रवेश करते हैं और जिस परमपदको चाहनेवाले ब्रह्मचारी लोग ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं, उस परमपद को मैं तेरे लिये संक्षेपसे कहूँगा।।११।।

I shall tell you briefly about that Supreme goal (viz., God, who is an embodiment of Truth, Knowledge and Bliss), which the knowers of the Veda term as the Indestructible; which striving recluses free from passion enter, and desiring which the celibates practise Brahmacharya. (11)

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ।। १२।।
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।। १३।।

सब इन्द्रियों के द्वारों को रोककर तथा मनको हृद्देश में स्थिर करके, फिर उस जीते हुए मन के द्वारा प्राण को मस्तकमें स्थापित करके, परमात्म सम्बन्धी योगधारणा में स्थित होकर जो पुरुष 'ॐ'इस एक अक्षररूप ब्रह्म को उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थस्वरूप मुझ निर्गुण ब्रह्म का चिन्तन करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है, वह पुरुष परमगति को प्राप्त होता है । ।।१२,१३।।

Having closed all the doors of the senses, and firmly holding the mind in the cavity of the heart, and then fixing the life-breath in the head, and thus remaining steadfast in Yogic concentration on God, he who leaves the body and departs uttering the one indestructible Brahmā, OM, and dwelling on Me in My absolute aspect, reaches the supreme goal. (12,13)

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥ १४॥

हे अर्जुन ! जो पुरूष मुझमें अनन्य चित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तम को स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगी के लिये मै सुलभ हूँ, अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ। ।।१४।।

Arjuna, whosoever always and constantly thinks of Me with undivided mind, to that Yogi ever absorbed in Me I am easily attainable. (14)

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥ १५॥

परम सिद्धि को प्राप्त महात्माजन मुझको प्राप्त होकर दुःखों के घर एवं क्षणभंगुर पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होते । ।।१५।।

Great souls, who have attained the highest perfection, having come to Me, are no more subjected to rebirth, which is the abode of sorrow, and transient by nature. (15)

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १६॥

हे अर्जुन ! ब्रह्मलोकपर्यन्त सब लोक पुनरावर्ती हैं, परन्तु हे कुन्तीपुत्र! मुझको प्राप्त होकर पुनर्जन्म नहीं होता, (क्योंकि मैं कालातीत हूँ, और ये सब ब्रह्मादि के लोक काल के द्वारा सीमित होने से अनित्य हैं।) ।।१६।।

Arjuna, all the worlds from Brahmaloka (the heavenly realm of the Creator, Brahmā) downwards are liable to appear and reappear. But O son of Kunti, on attaining Me there is no rebirth. (for while I am beyond Time, regions like Brahmaloka, being conditioned by time, are transitory.) (16)

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥ १७॥

ब्रह्मा का जो एक दिन है, उसको एक हजार चतुर्युगी तक की अवधिवाला और रात्रि को भी एक हजार चतुर्युगी तक की अवधि वाली जो पुरुष तत्त्वसे जानते है, वे योगीजन काल के तत्त्वको जानने वाले है ॥१७॥

Those Yogis who know from realization Brahmā's day as covering a thousand Mahāyugas, and so his night as extending to another thousand Mahāyugas know the reality about Time. (17)

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥ १८॥

सम्पूर्ण चराचर भूतगण ब्रह्मा के दिनके प्रवेशकाल में अव्यक्त से अर्थात् ब्रह्मा के सूक्ष्म शरीर से उत्पन्न होते हैं और ब्रह्मा की रात्रि के प्रवेशकाल में उस अव्यक्त नामक ब्रह्मा के सूक्ष्म शरीर में ही लीन हो जाते हैं । ॥१८॥

All embodied being emanate from the Unmanifest (i.e. Brahma's subtle body) at the coming of the cosmic day; at the cosmic nightfall they merge into the same subtle body of Brahma, known as the Unmanifest. (18)

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥ १९॥

हे पार्थ ! वही यह भूतसमुदाय उत्पन्न हो-होकर प्रकृति के वश में हुआ रात्रि के प्रवेशकाल में लीन होता है और दिनके प्रवेशकाल में फिर उत्पन्न होता है । ॥१९॥

Arjuna, this multitude of beings, being born again and again, is dissolved under compulsion of its nature at the coming of the cosmic night, and rises again at the commencement of the cosmic day. (19)

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ।
यःस सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥ २०॥

उस अव्यक्त से भी अति परे दूसरा अर्थात् विलक्षण जो सनातन अव्यक्त भाव है: वह परम दिव्य पुरुष सब भूतों के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता । ॥२०॥

Far beyond even this unmanifest, there is yet another unmanifest Existence, that Supreme Divine Person, who does not perish even though all being perish. (20)

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ २१॥

जो अव्यक्त 'अक्षर' इस नाम से कहा गया है, उसी अक्षर नामक अव्यक्त भाव को परमगति कहते है, तथा जिस सनातन अव्यक्त भाव को प्राप्त होकर मनुष्य वापस नहीं आते वह मेरा परम धाम है। ॥२१॥

The same unmanifest which has been spoken of as the Indestructible is also called the supreme Goal; that again is My supreme Abode, attaining which they return not to this mortal world. (21)

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
यस्यान्तः स्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥ २२॥

हे पार्थ ! जिस परमात्मा के अन्तर्गत सर्वभूत हैं और जिस सच्चिदानन्दघन परमात्मा से यह समस्त जगत् परिपूर्ण है, वह सनातन अव्यक्त परम पुरुष तो अनन्यभक्ति से ही प्राप्त होने योग्य है । ॥२२॥

Arjuna, that eternal unmanifest supreme Puruṣa in whom all beings reside and by whom all this is pervaded, is attainable only through exclusive Devotion. (22)

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥ २३ ॥

हे अर्जुन ! जिस काल में शरीर त्यागकर गये हुए योगीजन तो वापस न लौटनेवाली गति को और जिस काल में गये हुए वापस लौटनेवाली गति को ही प्राप्त होते हैं, उस काल को अर्थात् दोनों मार्गों को कहूँगा। ॥२३॥

Arjuna, I shall now tell you the time (path) departing when Yogis do not return, and also the time (path) departing when they do return. (23)

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥ २४ ॥

जिस मार्ग में ज्योतिर्मय अग्नि-अभिमानी देवता है, दिन का अभिमानी देवता है, शुक्लपक्ष का अभिमानी देवता है और उत्तरायण के छः महीनों का अभिमानी देवता है, उस मार्ग में मरकर गये हुए ब्रह्मवेत्ता योगीजन उपर्युक्त देवताओं द्वारा क्रम से ले जाये जाकर ब्रह्मको प्राप्त होते हैं।॥२४॥

(Of the two paths) the one is that in which are stationed the all-effulgent fire-god and the deities presiding over daylight, the bright fortnight, and the six months of the northward course of the sun respectively; proceeding along it after death Yogis, who have known Brahmā, being successively led by the above gods, finally reach Brahmā.(24)

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥ २५॥

जिस मार्गमें धूमाभिमानी देवता है, रात्रि-अभिमानी देवता है तथा कृष्णपक्ष का अभिमानी देवता है और दक्षिणायन के छः महीनों का अभिमानी देवता है, उस मार्गमें मरकर गया हुआ सकाम कर्म करनेवाला योगी उपर्युक्त देवताओं द्वारा क्रमसे ले गया हुआ चन्द्रमा की ज्योति को प्राप्त होकर स्वर्गमें अपने शुभकर्मों का फल भोगकर वापस आता है । ॥२५॥

The other path is that wherein are stationed the gods presiding over smoke, night, the dark fortnight, and the six months of the southward course of the sun; the Yogi (devoted to action with an interested motive) taking to this path after death is led by the above gods, one after another, and attaining the lustre of the moon (and enjoying the fruit of his meritorious deeds in heaven) returns to this mortal world. (25)

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ॥ २६॥

क्योंकि जगतके ये दो प्रकारके — शुक्ल और कृष्ण अर्थात् देवयान और पितृयान मार्ग सनातन माने गये हैं। इनमें एकके द्वारा गया हुआ — जिससे वापस नहीं लौटना पड़ता, उस परम गति को प्राप्त होता है और दूसरेके द्वारा गया हुआ फिर वापस आता है अर्थात् जन्म-मृत्युको प्राप्त होता है । ॥२६॥

For these two paths of the world, the bright and the dark, are considered to be eternal. Proceeding by one of them, one reaches the supreme state from which there is no return; and proceeding by the other, one returns to the mortal world. i.e. becomes subject to birth and death once more. (26)

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥ २७॥

हे पार्थ ! इस प्रकार इन दोनों मार्गों को तत्त्वसे जानकर कोई भी योगी मोहित नहीं होता। इस कारण हे अर्जुन! तू सब काल में समबुद्धिरूप योग से युक्त हो अर्थात निरन्तर मेरी प्राप्ति के लिये साधन करने वाला हो। ॥२७॥

Knowing thus the secret of these two paths, O son of Kunti no Yogi gets deluded. Therefore, Arjuna, at all times be steadfast in yoga in the form of equanimity (i.e. strive constantly for My realization). (27)

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव
दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा
योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥ २८॥

योगी पुरुष इस रहस्य को तत्त्वसे जानकर वेदों के पढ़ने में तथा यज्ञ, तप और दानादि के करने में जो पुण्यफल कहा है, उस सबको निःसंदेह उल्लंघन कर जाता है और सनातन परमपद को प्राप्त होता है। ॥२८॥

The Yogi realizing this profound truth, doubtless transcends all the rewards, ascribed in the scriptures, to the study of the Vedas, as well as to the performance of sacrifices, austerities and charities, and attains the beginningless supreme state. (28)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अक्षर ब्रह्म योगो
नाम अष्टमोऽध्याय: ॥८॥

अथ श्रीमद्भगवद्गीता

अथ नवमोऽध्यायः

ŚRĪMAD BHAGAVAD GĪTĀ

CHAPTER IX

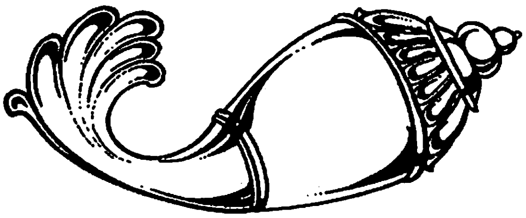

अथ नवमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच ।
इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥ १॥

श्रीभगवान् बोले—तुझ दोषदृष्टि रहित भक्त के लेये इस परम गोपनीय विज्ञानसहित ज्ञान को पुनः भलीभाँति कहूँगा, जिसको जानकर तू दुःखरूप संसार से मुक्त हो जायगा । ॥१॥

Śri Bhagavān said: To you, who are devoid of the carping spirit, I shall now unfold the most secret knowledge of Nirguṇa Brahmā along which the knowledge of manifest Divinity, knowing which you shall be free from the evil of worldly existence. (1)

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥ २॥

यह विज्ञानसहित ज्ञान सब विद्याओं का राजा, सब गोपनीयों का राजा, अति पवित्र, अति उत्तम, प्रत्यक्ष फलवाला, धर्मयुक्त, साधन करने में बड़ा सुगम और अविनाशी है । ॥२॥

This knowledge (of both the Nirguṇa and Saguṇa aspects of Divinity) is a sovereign science, a sovereign secret, supremely holy, most excellent, directly enjoyable, attended with virtue, very easy to practise and imperishable. (2)

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप ।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥ ३॥

हे परन्तप ! इस उपर्युक्त धर्ममें श्रद्धारहित पुरुष मुझको न प्राप्त होकर मृत्युरूप संसारचक्र मे भ्रमण करते रहते हैं । ॥३॥

Arjuna, people having no faith in this Dharma, failing to reach Me, revolve in the path of the world of death. (3)

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥ ४॥

मुझ निराकार परमात्मा से यह सब जगत् (जल से बरफ के सदृश) परिपूर्ण है और सब भूत मेरे अन्तर्गत संकल्प के आधार स्थित है, किन्तु वास्तव में मैं उनमें स्थित नहीं हूँ । ॥४॥

The whole of this universe is permeated by Me as unmanifest Divinity, and all beings rest on the idea within Me. Therefore, really speaking, I am not present in them. (4)

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥ ५॥

वे सब भूत मुझमें स्थित नहीं हैं; किन्तु मेरी ईश्वरीय योगशक्ति को देख कि भूतों का धारण पोषण करनेवाला और भूतों को उत्पन्न करनेवाला भी मेरा आत्मा वास्तव मे भूतों मे स्थित नहीं है । ॥५॥

Nay, all those beings abide not in Me, but behold the wonderful power of My divine Yoga; though the Sustainer and Creator of beings, My Self in reality dwells not in those beings. (5)

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥ ६॥

जैसे आकाश से उत्पन्न सर्वत्र विचरनेवाला महान् वायु सदा आकाश में ही स्थित है, वैसे ही मेरे संकल्पद्वारा उत्पन्न होने से सम्पूर्ण भूत मुझमें स्थित हैं, ऐसा जान । ॥६॥

Just as the extensive air, which is moving everywhere, (being born of ether) ever remains in ether, likewise know that all beings (who have originated form My thought) abide in Me. (6)

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ।। ७।।

हे अर्जुन ! कल्पों के अन्त में सब भूत मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं (प्रकृति में लीन होते हैं और) कल्पों के आदिमें उनको मै फिर रचता हूँ।।७।।

Arjuna, during the Final Dissolution all beings enter My Prakṛti (the prime cause), and at the beginning of creation, I send them forth again. (7)

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात्।। ८।।

अपनी प्रकृति को अंगीकार करके स्वभाव के बल से परतन्त्र हुए इस सम्पूर्ण भूतसमुदाय को बार-बार उनके कर्मों के अनुसार रचता हूँ। ।।८।।

Wielding My nature I release, again and again (according to their respective Karmas) all this multitude of beings subject to the influence of their own nature. (8)

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ।। ९।।

हे अर्जुन ! उन कर्मों में आसक्ति रहित और उदासीन के सदृश स्थित मुझ परमात्मा को वे कर्म नहीं बाँधते । ।।९।।

Arjuna, those actions, however, do not bind Me, unattached as I am to such actions and standing apart as it were. (9)

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥ १० ॥

हे अर्जुन ! मुझ अधिष्ठाता के सकाश से प्रकृति चराचर सहित सर्व जगत को रचती है और इस हेतु से ही यह संसारचक्र घूम रहा है॥१०॥

Arjuna, with Me as the supervisor, Nature brings forth the whole creation, consisting of both sentient and insentient beings; it is due to this cause that the wheel of Samasāra is going round. (10)

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥ ११ ॥

मेरे परमभाव को न जानने वाले मूढ लोग मनुष्य का शरीर धारण करने वाले मुझ सम्पूर्ण भूतों के महान् ईश्वर को तुच्छ समझते हैं, अर्थात् अपनी योगमाया से संसार के उद्धारके लिये मनुष्यरूप में विचरते हुए मुझ परमेश्वर को साधारण मनुष्य मानते हैं। ॥११॥

Fools, not knowing My supreme nature, think low of Me, the Overlord of the entire creation, who have put on the human semblance. (That is to say, they take Me, who have appeared in human garb through My Yogamaya for the deliverance of the world, for an ordinary mortal.) (11)

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः ।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ॥ १२ ॥

वे व्यर्थ आशा, व्यर्थ कर्म और व्यर्थ ज्ञानवाले विक्षिप्तचित्त अज्ञानीजन राक्षसी, आसुरी और मोहिनी प्रकृति को ही धारण किये रहते हैं । ॥१२॥

Those bewildered persons with vain hopes, futile actions and fruitless knowledge have embraced a fiendish, demoniacal and delusive nature. (12)

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥ १३॥

परन्तु हे कुन्तीपुत्र! दैवी प्रकृति के आश्रित महात्माजन मुझको सब भूतों का सनातन कारण और नाशरहित अक्षरस्वरूप जानकर अनन्य मन से युक्त होकर निरन्तर भजते हैं । ॥१३॥

On the other hand, Arjuna, great souls who have embraced the divine nature, knowing Me as the prime source of all lives and the imperishable eternal, worship Me constantly with none else in mind. (13)

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥ १४॥

वे दृढ़ निश्चयवाले भक्तजन निरन्तर मेरे नाम और गुणों का कीर्तन करते हुए तथा मेरी प्राप्ति के लिये यत्न करते हुए और मुझको बार-बार प्रणाम करते हुए सदा मेरे ध्यान में युक्त होकर अनन्य प्रेम से मेरी उपासना करते हैं । ॥१४॥

Constantly chanting My names and glories and striving for My realization, and bowing again and again to Me, those devotees of firm resolve, ever united with me through meditation, worship Me with single-minded devotion. (14)

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते ।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥ १५॥

दूसरे ज्ञानयोगी मुझ निर्गुण-निराकार ब्रह्म का ज्ञानयज्ञ के द्वारा अभिन्नभावसे पूजन करते हुए भी मेरी उपासना करते हैं और दूसरे मनुष्य बहुत प्रकारसे स्थित मुझ विराटस्वरुप परमेश्वर की पृथक् भावसे उपासना करते हैं।।१५।।

Others (who follow the path of Knowledge) betake themselves to Me through their offering of Knowledge, worshipping Me (in My absolute, formless aspect) as one with themselves; while still others worship Me in My Universal Form in many ways, taking Me to be diverse in diverse celestial forms. (15)

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥ १६॥

क्रतु मै हूँ, स्वधा मै हूँ, औषधि मै हूँ, मन्त्र मैं हूँ, घृत मैं हूँ, अग्नि मैं हूँ और हवनरूप क्रिया भी मैं ही हूँ। ।।१६।।

I am the Vedic ritual, I am the sacrifice, I am the offering to the departed; I am the herbage and food grains; I am the sacred formula, I am the clarified butter, I am the sacred fire, and I am verily the act of offering oblations into the fire. (16)

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रमोङ्कार ऋक्साम यजुरेव च ॥ १७॥

इस सम्पूर्ण जगत का धाता अर्थात् धारण करनेवाला एवं कर्मों के फल को देनेवाला, पिता, माता, पितामह, जानने योग्य, पवित्र ओंकार तथा ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद भी मैं ही हूँ। ।।१७।।

I am the sustainer and ruler of this universe, its father, mother and grandfather, the one worth knowing, the purifier, the sacred syllable OM, and the three Vedas--Ṛk, Yajus and Sāma. (17)

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ।। १८।।

प्राप्त होने योग्य परम धाम, भरण-पोषण करने वाला, सब का स्वामी, शुभाशुभ का देखनेवाला, सबका वासस्थान, शरण लेनेयोग्य, प्रत्युपकार न चाह कर हित करनेवाला सबकी उत्पत्ति-प्रलय का हेतु, स्थिति का आधार, निधान और अविनाशी कारण भी मैं ही हूँ । ।।१८।।

I am the supreme goal, supporter, lord, witness, abode, refuge, well-wisher seeking to return, origin and end, resting place, store-house (to which all beings return at the time of universal destruction), and imperishable seed. (18)

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ।। १९।।

मैं ही सूर्यरूप से तपता हूँ, वर्षा का आकर्षण करता हूँ और उसे बरसाता हूँ ; हे अर्जुन ! मैं ही अमृत और मृत्यु हूँ और सत्-असत् भी मैं ही हूँ । ।।१९।।

I radiate heat as the sun, and hold back as well as send forth showers, Arjuna. I am immortality as well as death; even so. I am being and non-being both. (19)

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक
मश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ।।२०।।

तीनों वेदों में विधान किये हुए सकाम कर्मों को करने वाले, सोमरस को पीनेवाले, पापरहित पुरुष मुझको यज्ञों के द्वारा पूजकर स्वर्ग की प्राप्ति चाहते हैं, वे पुरुष अपने पुण्यों के फलरूप स्वर्गलोक को प्राप्त होकर स्वर्ग में दिव्य देवताओं के भोगों को भोगते हैं । ॥२०॥

Those who perform action with some interested motive as laid down in these three Vedas and drink the sap of the Soma plant, and have thus been purged of sin, worshipping Me through sacrifices, seek access to heaven; attaining Indra's paradise as the result of their virtuous deeds, they enjoy the celestial pleasures of gods in heaven. (20)

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते ॥ २१॥

वे उस विशाल स्वर्गलोक को भोगकर पुण्य क्षीण होने पर मृत्युलोक को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार स्वर्ग के साधनरूप तीनों वेदों में कहे हुए सकाम कर्म का आश्रय लेनेवाले और भोगों की कामनावाले पुरुष बार-बार आवागमन को प्राप्त होते हैं अर्थात् पुण्यके प्रभाव से स्वर्ग में जाते हैं और पुण्य क्षीण होने पर मृत्युलोक में आते हैं । ॥२१॥

Having enjoyed the extensive heaven-world, they return to this world of mortals on the stock of their merits being exhausted. Thus devoted to the ritual with interested motive recommended by the three Vedas (as the means of attaining heavenly bliss), and seeking worldly enjoyments, they repeatedly come and go (i.e., ascend to heaven by virtue of their merits and return to earth when their fruit has been enjoyed). (21)

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।। २२।।

जो अनन्यप्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वर को निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्कामभाव से भजते हैं, उन नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करनेवाले पुरुषों का योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ । ।।२२।।

The devotees, however, who loving no one else constantly think of Me, and worship Me in a disinterested spirit, to those ever united in thought with Me, I bring full security and personally attend to their needs. (22)

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ।। २३।।

हे अर्जुन ! यद्यपि श्रद्धा से युक्त जो सकाम भक्त दूसरे देवताओं को पूजते हैं, वे भी मुझको ही पूजते हैं, किन्तु उनका वह पूजन अविधिपूर्वक अर्थात् अज्ञानपूर्वक है । ।।२३।।

Arjuna, even those devotees who, endowed with faith, worship other gods (with some interested motive) worship Me alone, though with a mistaken approach. (23)

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते ।। २४।।

क्योंकि सम्पूर्ण यज्ञों का भोक्ता और स्वामी भी मैं ही हूँ, परन्तु वे मुझ परमेश्वर को तत्त्व से नहीं जानते, इसीसे गिरते हैं अर्थात् पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं । ।।२४।।

For I am the enjoyer and also the lord of all sacrifices; but they know Me not in reality (as the supreme Deity), hence they fall (i.e., return to life on earth). (24)

यान्ति देवव्रता देवान्पितॄन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्॥ २५॥

देवताओं को पूजनेवाले देवताओं को प्राप्त होते हैं, पितरों को पूजनेवाले पितरों को प्राप्त होते हैं, भूतों को पूजनेवाले भूतों को प्राप्त होते हैं और मेरा पूजन करनेवाले भक्त मुझको ही प्राप्त होते हैं। इसलिये मेरे भक्तों का पुनर्जन्म नहीं होता। ॥२५॥

Those who are vowed to gods go to the gods; those who are vowed to the manes reach the manes; those who adore the spirits reach the spirits and those who worship Me come to Me alone. (That is why My devotees are no longer subject to birth and death). (25)

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥ २६॥

जो कोई भक्त मेरे लिये प्रेम से पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्धबुद्धि निष्काम प्रेमी भक्त का प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्पादि मैं सगुणरूप से प्रकट होकर प्रीति सहित खाता हूँ। ॥२६॥

Whosoever offers to Me with love a leaf, a flower, a fruit or even water, I appear in person before that disinterested devotee of sinless mind, and delightfully partake of that article offered by him with love. (26)

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥ २७॥

हे अर्जुन! तू जो कर्म करता है, जो खाता है, जो हवन करता है, जो दान देता है और जो तप करता है, वह सब मेरे अर्पण कर। ॥२७॥

Arjuna, whatever you do, whatever you eat, whatever you offer as oblation to the sacred fire, whatever you bestow as a gift, whatever you do by way of penance, offer it all to Me. (27)

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ।
सन्न्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥ २८॥

इस प्रकार, जिस में समस्त कर्म मुझ भगवान् के अर्पण होते हैं – ऐसे संन्यास योग से युक्त चित्तवाला तू शुभाशुभ फलरूप कर्मबन्धन से मुक्त हो जायगा और उनसे मुक्त होकर मुझ को ही प्राप्त होगा ॥२८॥

Will your mind thus established in the Yoga of renunciation (offering of all actions to Me), you will be freed from the bonds of Karma in the shape of good and evil consequences; and freed from them you will attain Me. (28)

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥ २९॥

मैं सब भूतों में समभाव से व्यापक हूँ, न कोई मेरा अप्रिय है और न प्रिय है, परन्तु जो भक्त मुझको प्रेम से भजते हैं, वे मुझमें है और मै भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ। ॥२९॥

I am equally present in all beings; there is none hateful or dear to Me. They, however, who devoutly worship Me abide in Me; and I too stand revealed in them. (29)

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥ ३०॥

यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभाव से मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही मानने योग्य है., क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है। अर्थात् उसने भलीभाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वर के भजन के समान अन्य कुछ भी नहीं है । ॥३०॥

Even if the vilest sinner worships Me with exclusive devotion, he should be accounted a saint; for he has rightly resolved. (He is positive in his belief that there is nothing like devoted worship of God.) (30)

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥ ३१॥

वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली परम शान्ति को प्राप्त होता है। हे अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता । ॥३१॥

Speedily he becomes virtuous and secures lasting peace. Know it for certain, Arjuna, that My devotee never falls. (31)

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियोवैश्यास्तथाशूद्रास्तेऽपियान्ति परां गतिम् ॥ ३२॥

हे अर्जुन ! स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा पापयोनि - चाण्डालादि जो कोई भी हों, वे भी मेरे शरण होकर परमगति को ही प्राप्त होते हैं । ॥३२॥

Arjuna, women, Vaiśyas (members of the trading and agriculturist classes)' Sūdras (those belonging to the labouring and artisan classes), as well as those of vile birth (such as the pariah), whoever they may be, taking refuge in Me they too attain the supreme goal. (32)

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥ ३३॥

फिर इसमे कहना ही क्या है, जो पुण्यशील ब्राह्मण तथा राजर्षि भक्तजन मेरी शरण होकर परम गति को प्राप्त होते हैं। इसलिये तू सुखरहित और क्षणभंगुर इस मनुष्य शरीर को प्राप्त होकर निरन्तर मेरा ही भजन कर । ॥३३॥

How much more, then, holy Brahmans and royal sages devoted to Me! Therefore, having obtained this joyless and transient human life, constantly worship Me. (33)

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥ ३४॥

मुझमें मन वाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करने वाला हो, मुझको प्रणाम करः इस प्रकार आत्मा को मुझमें नियुक्त करके मेरे परायण होकर तू मुझको ही प्राप्त होगा । ॥३४॥

Fix your mind on Me, be devoted to Me, worship Me and make obeisance to Me; thus linking your self with Me and entirely depending on Me, you shall come to Me. (34)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्ययोगो
नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

ॐ

अथ श्रीमद्भगवद्गीता

अथ दशमोऽध्यायः

ŚRĪMAD BHAGAVAD GĪTĀ

CHAPTER X

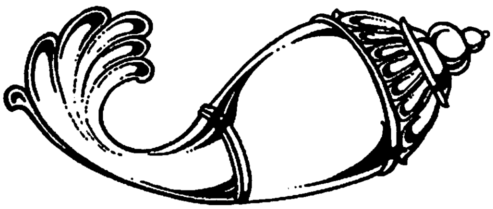

अथ दशमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच ।
भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः ।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥ १॥

श्रीभगवान् बोले—हे महाबाहो ! फिर भी मेरे परम रहस्य और प्रभाव युक्त वचन को सुन, जिसे मैं तुझ अतिशय प्रेम रखनेवाले के लिये हित की इच्छा से कहूँगा । ॥१॥

Śrī Bhagavān said: Arjuna, hear once again My supreme word, which I shall speak to you who are so loving, out of solicitude for your welfare. (1)

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः ।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ॥ २॥

मेरी उत्पत्ति को अर्थात् लीला से प्रकट होने को न देवता लोग जानते हैं और न महर्षिजन ही जानते हैं, क्योंकि मैं सब प्रकार से देवताओं का और महर्षियों का भी आदिकारण हूँ । ॥२॥

Neither gods nor the great sages know the secret of my birth (i.e. My appearance in human or other garb out of mere sport); for I am the prime cause in all respects of gods as well as of the great seers. (2)

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।
असम्मूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३॥

जो मुझ को अजन्मा अर्थात् वास्तव में जन्मरहित, अनादि और लोकों का महान् ईश्वर तत्त्व से जानता है, वह मनुष्यों में ज्ञानवान् पुरुष सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है । ॥३॥

He who knows Me in reality as birthless and without beginning, and as the supreme Lord of the Universe, he undeluded among men, is purged of all sins. (3)

बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च ॥ ४॥
अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥ ५॥

निश्चय करने की शक्ति, यथार्थ ज्ञान, असम्मूढता, क्षमा, सत्य, इन्द्रियों का वश में करना, मन का निग्रह तथा सुख-दुःख, उत्पत्ति-प्रलय और भय-अभय तथा अहिंसा, समता, सन्तोष, तप, दान, कीर्ति और अपकीर्ति -- ऐसे ये प्राणियों के नाना प्रकारके भाव मुझसे ही होते हैं। ॥४.५॥

Reason, right knowledge, unclouded understanding, forbearance, veracity, control over the senses and mind, joy and sorrow, evolution and dissolution, fear and fearlessness, non-violence, equanimity, contentment, austerity, charity, fame and obloquy, – these diverse traits of creatures emanate from Me alone. (4,5)

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः॥ ६॥

सात महर्षिजन, चार उनसे भी पूर्व में होने वाले सनकादि तथा स्वायम्भुव आदि चौदह मनु—ये मुझमें भाववाले सब-के-सब मेरे संकल्प से उत्पन्न हुए है, जिनकी संसार में यह सम्पूर्ण प्रजा है। ॥६॥

The seven great seers, their four elders (Sanaka and others), and the fourteen Manus or progenitors of mankind (such as Swayambhuvā and his successors), who are all devoted to Me, were born of My will; from them all these creatures in the world have descended. (6)

एतां विभूतिं योगं च मम यो वत्ति तत्त्वतः ।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥ ७॥

जो पुरुष मेरी इस परमैश्वर्यरूप विभूति को और योगशक्ति को तत्व से जानता है, वह निश्चल भक्तियोग से युक्त हो जाता है–इसमें कुछ भी संशय नहीं है । ॥७॥

He who knows in reality this supreme divine glory and supernatural power of Mine gets established in Me through unfaltering devotion; of this there is no doubt. (7)

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ॥ ८॥

मै वासुदेव ही सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति का कारण हूँ और मुझसे ही सब जगत् चेष्टा करता है–इस प्रकार समझकर श्रद्धा और भक्ति से युक्त बुद्धिमान् भक्तजन मुझ परमेश्वर को ही निरन्तर भजते हैं । ॥८॥

I am the source of all creation and everything in the world moves because of Me; knowing thus the wise, full of devotion, constantly worship Me. (8)

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥ ९॥

निरन्तर मुझमें मन लगाने वाले और मुझमें ही प्राणोंको अर्पण करने वाले भक्तजन मेरी भक्ति की चर्चा के द्वारा आपस में मेरे प्रभाव को जनाते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा कथन करते हुए ही निरन्तर सन्तुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेव में ही निरन्तर रमण करते हैं। ॥९॥

With their mind fixed on Me, and their lives surrendered to Me, enlightening one another about My greatness and speaking of Me, My devotees ever remain contented and take delight in Me. (9)

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥ १०॥

उन निरन्तर मेरे ध्यान आदि मे लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तों को मैं वह तत्वज्ञानरूप योग देता हूँ जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं । ॥१०॥

On those ever united through meditation with Me and worshipping Me with love, I confer that Yoga of wisdom through which they come to Me. (10)

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥ ११॥

हे अर्जुन! उनके ऊपर अनुग्रह करने के लिये उनके अन्तःकरण में स्थित हुआ मै स्वयं ही उनके अज्ञानजनित अन्धकार को प्रकाशमय तत्त्वज्ञानरूप दीपक के द्वारा नष्ट कर देता हूँ । ॥११॥

In order to shower My grace on them I, dwelling in their heart, dispel the darkness born of ignorance by the shining light of wisdom. (11)

अर्जुन उवाच ।
परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम्।। १२।।
आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा ।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे।। १३।।

अर्जुन बोले—आप परम ब्रह्म, परम धाम और परम पवित्र हैं, क्योंकि आपको सब ऋषिगण सनातन दिव्य पुरुष एवं देवों का भी आदिदेव, अजन्मा और सर्वव्यापी कहते हैं, वैसे ही देवर्षि नारद तथा असित और देवल ऋषि तथा महर्षि व्यास भी कहते हैं और स्वयं आप भी मेरे प्रति कहते हैं। ।।१२,१३।।

Arjuna said: You are the transcendent Eternal, the supreme Abode and the greatest purifier; all the seers speak of You as the eternal divine Puruṣa, the primal Deity, unborn and all-pervading. Likewise speak the celestial sage Nārada, the sages Asita and Devala and the great sage Vyāsa; and Yourself too proclaim this to me. (12,13)

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव।
न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ।। १४।।

हे केशव ! जो कुछ भी मेरे प्रति आप कहते हैं, इस सबको मैं सत्य मानता हूँ। हे भगवन्। आपके लीलामय स्वरूप को न तो दानव जानते हैं और न देवता ही। ।।१४।।

Kṛṣṇa, I believe as true all that You tell me. Lord, neither demons nor gods are aware of Your manifestation through sport. (14)

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ।। १५।।

हे भूतों को उत्पन्न करने वाले ! हे भूतों के ईश्वर ! हे देवों के देव! हे जगत के स्वामी ! हे पुरुषोत्तम ! आप स्वयं ही अपने से अपने को जानते हैं । ॥१५॥

O Creator of beings, O Ruler of creatures, god of gods, the Lord of the universe, O supreme Puruṣa, You alone know what You are by Yourself. (15)

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि ॥ १६॥

इसलिये आप ही उन अपनी दिव्य विभूतियों को सम्पूर्णता से कहने में समर्थ हैं, जिन विभूतियों के द्वारा आप इन सब लोकों को व्याप्त करके स्थित हैं । ॥१६॥

Therefore, You alone can describe in full Your divine glories, whereby You stand pervading all these worlds. (16)

कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन् ।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ॥ १७॥

हे योगेश्वर ! मैं किस प्रकार निरन्तर चिन्तन करता हुआ आपको जानूँ और हे भगवन् ! आप किन-किन भावों में मेरे द्वारा चिन्तन करने योग्य हैं । ॥१७॥

O Master of Yoga, through what process of continuous meditation shall I know You? And in what particular forms, O Lord, are You to be meditated upon by Me? (17)

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ।
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ॥ १८॥

हे जनार्दन ! अपनी योगशक्ति को और विभूति को फिर भी विस्तारपूर्वक कहिये, क्योंकि आपके अमृतमय वचनों को सुनते हुए मेरी तृप्ति नहीं होती अर्थात् सुनने की उत्कण्ठा बनी ही रहती है । ॥१८॥

Kṛṣṇa, tell me once more in detail Your power of Yoga and Your glory; for I know no satiety in hearing Your nectar-like words. (18)

श्रीभगवानुवाच ।
हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे ॥ १९॥

श्रीभगवान् बोले-हे कुरुश्रेष्ठ ! अब मैं जो मेरी दिव्य विभूतियाँ हैं, उनको तेरे लिये प्रधानता से कहूँगा, क्योंकि मेरे विस्तार का अन्त नहीं है । ॥१९॥

Śri Bhagavān said: Arjuna, now I shall tell you My conspicuous divine glories; for there is no limit to My magnitude. (19)

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥ २०॥

हे अर्जुन ! मैं सब भूतों के हृदय में स्थित सबका आत्मा हूँ तथा सम्पूर्ण भूतों का आदि, मध्य और अन्त भी मैं ही हूँ । ॥२०॥

Arjuna, I am the universal Self seated in the heart of all beings; so I alone am the beginning and middle and also the end of all beings. (20)

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् ।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥ २१॥

मै अदिति के बारह पुत्रों में विष्णु और ज्योतियों में किरणोंवाला सूर्य हूँ तथा मैं उन्चास वायुदेवताओं का तेज और नक्षत्रोंका अधिपति चन्द्रमा हूँ। ॥२१॥

I am Viṣṇu among the twelve sons of Aditi, and the radiant sun among the luminaries; I am the glow of the Maruts (the forty-nine wind-gods), and the moon among the stars. (21)

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना॥ २२॥

मैं वेदों में सामवेद हूँ, देवों में इन्द्र हूँ, इन्द्रियों में मन हूँ और भूतप्राणियों की चेतना अर्थात् जीवन-शक्ति हूँ। ॥२२॥

Among the Vedas, I am the Sāmaveda; among the gods, I am Indra. Among the organs of perception etc. I am the mind; and I am the consciousness (life-energy) in living beings. (22)

रुद्राणां शङ्करश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम्।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम्॥ २३॥

मै एकादश रुद्रों में शंकर हूँ और यक्ष तथा राक्षसों में धन का स्वामी कुबेर हूँ। मैं आठ वसुओंमें अग्नि हूँ और शिखरवाले पर्वतोंमें सुमेरु पर्वत हूँ। ॥२३॥

Among the eleven Rudras (gods of destruction), I am Śiva; and among the Yakṣas and Rākṣasas, I am the lord of riches (Kubera). Among the eight Vasus, I am the god of fire; and among the mountains, I am the Meru. (23)

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् ।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः ॥ २४॥

पुरोहितों में मुखिया बृहस्पति मुझको जान। हे पार्थ ! मैं सेनापतियों में स्कन्द और जलाशयों में समुद्र हूँ । ॥२४॥

Among the priests, Arjuna, know Me to be their chiefs, Bṛhaspati. Among warrior-chiefs, I am Skanda (the generalissimo of the gods); and among the waters, I am the ocean. (24)

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोस्मि स्थावराणां हिमालयः ॥ २५॥

मै महर्षियों में भृगु और शब्दों में एक अक्षर अर्थात् ओंकार हूँ। सब प्रकार के यज्ञोंमें जपयज्ञ और स्थिर रहनेवालों में हिमालय पहाड़ हूँ।॥२५॥

Among the great seers, I am Bhṛgu. Among words, I am the sacred syllable OṂ, Among offerings, I am the offering of Japa (muttering of sacred formulas); and among the immovables, the Himālaya. (25)

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥ २६॥

मै सब वृक्षों में पीपल का वृक्ष, देवर्षियों में नारदमुनि, गन्धर्वों में चित्ररथ और सिद्धों में कपिल मुनि हूँ । ॥२६॥

Among all trees, I am the Aśwattha (the holy fig tree); among the celestial sages, Nārada; among the Gandharvas (celestial musicians), Chitraratha, and among the Siddhas, I am the sage Kapila. (26)

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् ।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम् ।। २७।।

घोड़ों में अमृत के साथ उत्पन्न होनेवाला उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा, श्रेष्ठ हाथियों में ऐरावत नामक हाथी और मनुष्यों में राजा मुझको जान। ।।२७।।

Among horses, know me to be the celestial horse Uccaiḥśravā, begotten of the churning of the ocean along with nectar; among mighty elephants, Airāvata (Indra's elephant); and among men, the king. (27)

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक्।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः।। २८।।

मैं शस्त्रों में वज्र और गौओं में कामधेनु हूँ। शास्त्रोक्त रीतिसे सन्तान की उत्पत्तिका हेतु कामदेव हूँ, और सर्पो में सर्पराज वासुकि हूँ । ।।२८।।

Among weapons, I am the thunderbolt; among cows, I am the celestial cow Kāmadhenu (the cow of plenty). I am the sexual desire which leads to procreation (as enjoined by the scriptures); among serpents I am Vāsuki. (28)

अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम् ।
पितॄणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् ।। २९।।

मैं नागों में शेषनाग और जलचरों का अधिपति वरुण देवता हूँ और पितरोंमे अर्यमा नामक पितर तथा शासन कनेवालों में यमराज मैं हूँ।।२९।।

Among Nāgas (a special class of serpents), I am the serpent-god Ananta; and I am Varuṇa, the lord of aquatic creatures. Among the manes, I am Aryamā (the head of the Pitṛs); and among rulers, I am Yama (the god of death). (29)

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम् ।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ।। ३०।।

मै दैत्यों में प्रह्लाद और गणना करनेवाले का समय हूँ तथां पशुओं में मृगराज सिंह और पक्षियों में मैं गरुड़ हूँ। ।।३०।।

Among the Daityas, I am the great devotee Prahlāda; and among reckoners, I am Time. So among quadrupeds, I am the lion; and among birds, Garuḍa. (30)

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् ।
झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी ।। ३१।।

मैं पवित्र करनेवालों में वायु और शस्त्रधारियों में श्रीराम हूँ तथा मछलियों में मगर हूँ और नदियों में श्रीभागीरथी गंगाजी हूँ। ।।३१।।

Among purifiers, I am the wind; among warriors, I am Śri Rāma. Among fishes, I am the shark; and among streams, I am the Ganges. (31)

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन ।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ।। ३२।।

हे अर्जुन ! सृष्टियों का आदि और अन्त तथा मध्य भी मैं ही हूँ। मैं विद्याओं में अध्यात्मविद्या अर्थात् ब्रह्मविद्या और परस्पर विवाद करनेवालों का तत्त्व-निर्णय के लिये किया जानेवाला वाद हूँ। ।।३२।।

Arjuna, I am the beginning and the middle and the end of all creations. Of sciences, I am the science of the soul, or metaphysics; in disputants, I am the right type of reasoning. (32)

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च ।
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः ।। ३३ ।।

मैं अक्षरों में अकार हूँ और समासों में द्वन्द्व नामक समास हूँ, अक्षय काल अर्थात् काल का भी महाकाल तथा सब ओर मुखवाला, विराट्स्वरूप सबका धारण-पोषण करनेवाला भी मैं ही हूँ । ।।३३।।

Among the sounds represented by the various letters, I am `A' (the sound represented by the first letter of the alphabet); of the different kinds of compounds in grammar, I am the copulative compound. I am verily the endless Time (the devourer of Time, God); I am the sustainer of all, having My face on all sides. (33)

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ।
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा ।। ३४ ।।

मै सबका नाश करनेवाला मृत्यु और उत्पन्न होनेवालों का उत्पत्ति हेतु हूँ तथा स्त्रियों में कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा हूँ।।३४।।

I am the all-destroying Death that snatches all, and the origin of all that shall be born. Among women, I am Kirti, Śri, Vaḳ, Smrti, Medhā, Dhṛti and Kṣamā (the goddesses presiding over glory, prosperity, speech, memory, intelligence, stead fastness and forbearance respectively). (34)

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम् ।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ।। ३५ ।।

तथा गायन करने योग्य श्रुतियों में मैं बृहत्साम और छन्दों में गायत्री छन्द हूँ तथा महीनों में मार्गशीर्ष और ऋतुओं में वसन्त मैं हूँ। ।।३५।।

Likewise among the Śrutis that can be sung, I am the variety known as Bṛhatsama; while among the Vedic hymns, I am the hymn known as Gāyatri. Again, among the twelve months of the Hindu calendar, I am the month known as `Margaṣirsa' (and) among the six seasons (successively appearing in India in course of a year) I am the vernal season. (35)

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ॥ ३६॥

मै छल करने वालों में जूआ और प्रभावशाली पुरुषों का प्रभाव हूँ। मैं जीतने वालों का विजय हूँ, निश्चय करनेवालों का निश्चय और सात्त्विक पुरुषों का सात्त्विक भाव हूँ । ॥३६॥

I am gambling among deceitful practices, and the glory of the glorious. I am the victory of the victorious, the resolve of the resolute, the goodness of the good. (36)

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनञ्जयः ।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः॥ ३७॥

वृष्णिवंशियों में वासुदेव अर्थात् मैं स्वयं तेरा सखा, पाण्डवों में धनञ्जय अर्थात् तू, मुनियों में वेदव्यास और कवियों में शुक्राचार्य कवि भी मैं ही हूँ। ॥३७॥

I am Kṛṣṇa among the Vṛṣṇis, Arjuna Among the sons of Paṇḍu, Vyāsa among the sages, and the sage Sukrāchārya among the wise. (37)

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ॥ ३८॥

मै दमन करने वालों का दण्ड अर्थात् दमन करने की शक्ति हूँ, जीतने की इच्छा वालों की नीति हूँ, गुप्त रखने योग्य भावोंका रक्षक मौन हूँ और ज्ञानवानों का तत्त्वज्ञान ही मैं ही हूँ । ॥३८॥

I am the subduing power in rulers; I am righteousness in those who seek to conquer. Of things to be kept secret, I am the custodian in the shape of reticence; and I am the wisdom of the wise. (38)

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ॥ ३९॥

और हे अर्जुन ! जो सब भूतो की उत्पत्ति का कारण है, वह भी मैं ही हूँ, क्योंकि ऐसा चर और अचर कोई भी भूत नहीं है, जो मुझसे रहित हो । ॥३९॥

Arjuna, I am even that which is the seed of all life. For there is no creature, moving or inert, which exists without Me. (39)

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप ।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ॥ ४०॥

हे परंतप ! मेरी दिव्य विभूतियों का अन्त नहीं है, मैने अपनी विभूतियों का यह विस्तार तो तेरे लिये एकदेश से अर्थात् संक्षेप से कहा है । ॥४०॥

Arjuna, there is no limit to My divine manifestations. This is only a brief description by Me of the extent of My glory. (40)

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंशसम्भवम् ॥ ४१॥

जो-जो भी विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है, उस-उसको तू मेरे तेज के अंशकी ही अभिव्यक्ति जान।
॥४१॥

Every such being as is glorious, brilliant and powerful, know that to be a part manifestation of My glory. (41)

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥ ४२॥

अथवा हे अर्जुन ! इस बहुत जानने से तेरा क्या प्रयोजन है। मैं इस सम्पूर्ण जगत् को अपनी योगशक्ति के एक अंशमात्र से धारण करके स्थित हूँ। ॥४२॥

Or, what will you gain by knowing all this in detail, Arjuna? Suffice it to say that I stand holding this entire universe by a fraction of My Yogic Power. (42)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगो
नाम दशमोऽध्याय: ॥ १०॥

अथ श्रीमद्भगवद्गीता

अथ एकादशोऽध्यायः

ŚRĪMAD BHAGAVAD GĪTĀ

CHAPTER XI

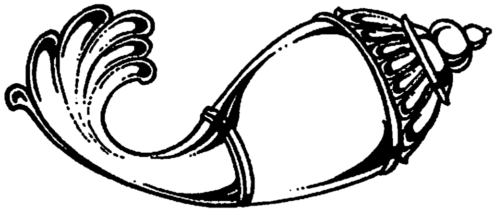

अथ एकादशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच ।
मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसञ्ज्ञितम् ।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ॥ १॥

अर्जुन बोले - मुझपर अनुग्रह करने के लेये आपने जो परम गोपनीय अध्यात्मविषयक वचन अर्थात् उपदेश कहा, उससे मेरा यह अज्ञान नष्ट हो गया है । ॥१॥

Arjuna said: Thanks to the most profound words of spiritual wisdom that You have spoken out of kindness to me, this delusion of mine has entirely disappeared. (1)

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया ।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम् ॥ २॥

क्योंकि हे कमलनेत्र! मैंने आप से भूतों की उत्पत्ति और प्रलय विस्तारपूर्वक सुने हैं तथा आपकी अविनाशी महिमा भी सुनी है । ॥२॥

For, Kṛṣṇa, I have heard from You in detail an account of the evolution and dissolution of beings, and also Your immortal glory. (2)

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर ।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ॥ ३॥

हे परमेश्वर ! आप अपने को जैसा कहते हैं, यह ठीक ऐसा ही है, परन्तु हे पुरुषोत्तम ! आपके ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेज से युक्त ऐश्वर-रूपको मैं प्रत्यक्ष देखना चाहता हूँ । ॥३॥

Lord, You are precisely what You declare Yourself to be. But I long to see Your divine form (possessed of wisdom, glory, energy, strength, valour and effulgence), O Best of persons! (3)

मन्यसेयदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ॥ ४॥

हे प्रभो ! यदि मेरे द्वारा आपका वह रूप देखा जाना शक्य है-ऐसा आप मानते हैं, तो हे योगेश्वर ! उस अविनाशी स्वरूप का मुझे दर्शन कराइये । ॥४॥

Kṛṣṇa, If You think that it can be seen by me, then, O Lord of Yoga, reveal to me Your imperishable form. (4)

श्रीभगवानुवाच ।
पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ॥ ५॥

श्रीभगवान् बोले--हे पार्थ ! अब तू मेरे सैकडों-हजारों नाना प्रकार के और नाना वर्ण तथा नाना आकृति वाले अलौकिक रूपों को देख । ॥५॥

Śri Bhagavān said: Arjuna, behold presently in hundreds and thousands My multifarious divine forms, of various colours and shapes. (5)

पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥ ६॥

हे भरतवंशी अर्जुन ! तू मुझमें आदित्यों को अर्थात् अदिति के द्वादश पुत्रों को, आठ वसुओं को, एकादश रुद्रों को, दोनों अश्विनीकुमारों को और उनचास मरुद्गणों को देख। तथा और भी बहुत-से पहले न देखे हुए आश्चर्यमय रूपों को देख । ॥६॥

Behold in Me, Arjuna, the twelve sons of Aditi, the eight Vasus, the eleven Rudras (gods of destruction), the two Aświnikumaras (the twin-born physicians of gods) and the forty-nine Martus (wind-gods), and witness many more wonderful forms never seen before. (6)

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम्।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ॥ ७॥

हे अर्जुन ! अब इस मेरे शरीर में एक जगह स्थित चराचरसहित सम्पूर्ण जगत् को देख तथा और भी जो कुछ देखना चाहते हो सो देख। ॥७॥

Arjuna, behold as concentrated within this body of Mine the entire creation consisting of both animate and inanimate beings, and whatever else you desire to see. (7)

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्॥ ८॥

परन्तु मुझ को तू इन अपने प्राकृत नेत्रोंद्वारा देखने में निःसन्देह समर्थ नहीं है, इसीसे मैं तुझे दिव्य अर्थात् अलौकिक चक्षु देता हूँ, उससे तू मेरी ईश्वरीय योगशक्तिको देख। ॥८॥

But surely you cannot see Me with these human eyes of yours; therefore, I vouchsafe to you the divine eye. With this you behold My divine power of Yoga. (8)

सञ्जय उवाच।
एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम्॥ ९॥

सञ्जय बोले-हे राजन् ! महायोगेश्वर और सब पापों के नाश करनेवाले भगवान् ने इस प्रकार कहकर उसके पश्चात् अर्जुन को परम ऐश्वर्ययुक्त दिव्यस्वरूप दिखलाया । ॥९॥

Sanjay said: My lord! having spoken thus, Śri Kṛṣṇa, the supreme Master of Yoga, forthwith revealed to Arjuna His supremely glorious divine Form. (9)

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥ १०॥
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥ ११॥

अनेक मुख और नेत्रों से युक्त, अनेक अद्‌भुत दर्शनोंवाले, बहुत-से दिव्य भूषणों से युक्त और बहुत-से दिव्य शस्त्रों को हाथों में उठाये हुए, दिव्य माला और वस्त्रों को धारण किये हुए और दिव्य गन्ध का सारे शरीर में लेप किये हुए, सब प्रकार के आश्चर्यों से युक्त, सीमारहित और सब ओर मुख किये हुए विराट्स्वरूप परमदेव परमेश्वर को अर्जुन ने देखा। ॥१०-११॥

Arjuna saw the supreme Deity possessing many mouths and eyes, presenting many a wonderful sight, decked with many divine ornaments, wielding many uplifted divine weapons, wearing divine garlands and clothes, besmeared all over with divine sandal-pastes, full of all wonders, infinite and having faces on all sides. (10-11)

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥ १२॥

आकाश में हजार सूर्यों के एक साथ उदय होनेसे उत्पन्न जो प्रकाश हो, वह भी उस विश्वरूप परमात्मा के प्रकाश के सदृश कदाचित् ही हो । ॥१२॥

If there be the effulgence of a thousand suns bursting forth all at once in the heavens, even that would hardly approach the splendour of the mighty Lord. (12)

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ॥ १३॥

पाण्डुपुत्र अर्जुन ने उस समय अनेक प्रकार से विभक्त अर्थात् पृथक् पृथक् सम्पूर्ण जगत् को देवों के देव श्रीकृष्ण भगवान् के उस शरीर में एक जगह स्थित देखा । ॥१३॥

Concentrated at one place in the person of that supreme Deity, Arjuna then beheld the whole universe with its manifold divisions. (13)

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनञ्जयः ।
प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत ॥ १४॥

उसके अनन्तर वह आश्चर्य से चकित और पुलकित शरीर अर्जुन प्रकाशमय विश्वरूप परमात्मा को श्रद्धा-भाक्ति-सहित सिर से प्रणाम करके हाथ जोड़कर बोला । ॥१४॥

Then Arjuna, full of wonder and with the hair standing on end, reverentially bowed his head to the divine Lord, and with joined palms addressed Him thus. (14)

अर्जुन उवाच ।
पश्यामि देवांस्तव देव देहे
सर्वांस्तथा भूतविशेषसङ्घान् ।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ-
मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥ १५॥

अर्जुन बोले—हे देव ! मै आपके शरीर में सम्पूर्ण देवों को तथा अनेक भूतों के समुदायों को, कमल के आसन पर विराजित ब्रह्मा को, महादेव को और सम्पूर्ण ऋषियों को तथा दिव्य सर्पों को देखता हूँ। ॥१५॥

Arjuna said: Lord, I behold within your body all gods and hosts of different beings, Brahmā throned on his lotus-seat Śiva and all Ṛṣis and celestial serpents. (15)

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं
पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम् ।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं
पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ॥ १६॥

हे सम्पूर्ण विश्वके स्वामिन् ! आपको अनेक भुजा, पेट, मुख और नेत्रोंसे युक्त तथा सब ओरसे अनन्त रूपोंवाला देखता हूँ। हे विश्वरूप ! मैं आपके न अन्त को देखता हूँ, न मध्य को और न आदिको ही। ॥१६॥

O Lord of the universe, I see you endowed with numerous arms, bellies, mouths, and eyes and having innumerable forms extended on all sides. I see neither your beginning nor middle, nor even your end, manifested as you are in the form of the universe. (16)

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च
तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम् ।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ता
द्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥ १७॥

आपको मैं मुकुटयुक्त, गदायुक्त और चक्रयुक्त तथा सब ओर से प्रकाशमान तेज के पुञ्ज, प्रज्वलित अग्नि और सूर्य के सदृश ज्योतियुक्त, कठिनता से देखे जानेयोग्य और सब ओरसे अप्रमेयस्वरूप देखता हूँ।॥१७॥

I see you endowed with diadems, clubs and discuses, a mass of splendour flaming all round, having the brilliance of a blazing fire and the sun, hard to gaze at and immeasurable on all sides. (17)

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥ १८॥

आप ही जानने योग्य परम अक्षर अर्थात् परब्रह्म परमात्मा हैं, आप ही इस जगत के परम आश्रय हैं, आप ही अनादि धर्म के रक्षक हैं और आप ही अविनाशी सनातन पुरुष हैं, ऐसा मेरा मत है । ॥१८॥

You are the supreme indestructible worthy of being known, you are the ultimate refuge of this universe. You are, again, the protector of the ageless Dharms; I consider You to be the eternal imperishable Being. (18)

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्य-
मनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं
स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ॥ १९॥

आप को आदि, अन्त और मध्य से रहित, अनन्त सामर्थ्य से युक्त, अनन्त भुजा वाले, चन्द्र, सूर्य रूप नेत्रोंवाले, प्रज्वलित अग्निरूप मुखवाले और अपने तेज से इस जगत्को संतप्त करते हुए देखता हूँ। ॥१९॥

I see you without beginning, middle or end, possessing unlimited prowess and endowed with numberless arms, having the moon and the sun for Your eyes, and blazing fire for Your mouth, and scorching this universe by Your radiance. (19)

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि
व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं
लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥ २०॥

हे महात्मन् ! यह स्वर्ग और पृथ्वी के बीच का सम्पूर्ण आकाश तथा दिशाएँ एक आप से ही परिपूर्ण हैं, तथा आपके इस अलौकिक और भयंकर रूप को देखकर तीनों लोक अति व्यथा को प्राप्त हो रहे हैं।।२०।।

Yonder space between heaven and earth and all the quarters are entirely filled by You alone. Seeing this transcendent, dreadful Form of Yours, O Soul of the universe, all the three worlds feel greatly alarmed. (20)

अमी हि त्वां सुरसङ्घा विशन्ति
केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति ।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाः
स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः ॥ २१॥

वे ही देवताओं के समूह आप में प्रवेश करते हैं और कुछ भयभीत होकर हाथ जोड़े आप के नाम और गुणों का उच्चारण करते हैं तथा महर्षि और सिद्धों के समुदाय 'कल्याण हो' ऐसा कहकर उत्तम-उत्तम स्तोत्रोंद्वारा आपकी स्तुति करते हैं । ।।२१।।

Yonder hosts of gods are entering You; some with palms joined out of fear are uttering Your names and glories. Multitudes of Maharsis and Siddhas, saying 'Let there be peace', are extolling You by means of excellent hymns. (21)

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या
विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघा
वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥ २२॥

जो ग्यारह रुद्र और बारह आदित्य तथा आठ वसु, साध्यगण, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार तथा मरुद्गण और पितरों का समुदाय तथा गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सिद्धों के समुदाय हैं - वे सब ही विस्मित होकर आपको देखते हैं । ॥२२॥

The eleven Rudras, twelve Ādityas and eight Vasus, the Sadhyas and Viśwedevas, the two Aświnikumāras and forty nine Marutas, as well as the manes and multitudes of Gandharvas, Yakṣas, Asuras and Siddhas, all these gaze upon You in amazement. (22)

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं
महाबाहो बहुबाहूरुपादम् ।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं
दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् ॥ २३॥

हे महाबाहो ! आप के बहुत मुख और नेत्रों वाले, बहुत जंघा और पैरों वाले, बहुत उदरों वाले और बहुत-सी दाढों के कारण अत्यन्त विकराल महान् रूप को देखकर सब लोग व्याकुल हो रहे हैं तथा मैं भी व्याकुल हो रहा हूँ । ॥२३॥

Lord, seeing his stupendous and dreadful Form of Yours possessing numerous mouths and eyes, many arms, thighs and feet, many bellies and many teeth, the worlds are terror-struck; so am I. (23)

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं
व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् ।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा
धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो ॥ २४॥

क्योंकि हे विष्णो! आकाश को स्पर्श करने वाले, देदीप्यमान, अनेक वर्णों से युक्त तथा फैलाये हुए मुख और प्रकाशमान विशाल नेत्रों से युक्त आप को देखकर भयभीत अन्तःकरण वाला मैं धीरज और शान्ति नहीं पाता हूँ। ॥२४॥

Lord, seeing Your Form reaching the heavens, effulgent multi-coloured having its mouth wide open and possessing large flaming eyes, I, with my inmost self frightened, have lost self-control and find no peace. (24)

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि
दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि ।
दिशो न जाने न लभे च शर्म
प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ २५॥

दाढ़ों के कारण विकराल और प्रलयकाल की अग्नि के समान प्रज्वलित आपके मुखों को देखकर मैं दिशाओं को नहीं जानता हूँ और सुख भी नहीं पाता हूँ। इसलिये हे देवेश! हे जगन्निवास! आप प्रसन्न हों। ॥२५॥

Seeing your faces frightful on account of their teeth and flaring like the fire at the time of universal destruction, I am utterly bewildered and find no happiness; therefore, be kind to me, O Lord of celestials and Resting-place of the universe. (25)

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः
सर्वे सहैवावनिपालसंघैः ।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ
सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ॥ २६॥
वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति
दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु
संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः ॥ २७॥

वे सभी धृतराष्ट्र के पुत्र राजाओं के समुदायसहित आप में प्रवेश कर रहे हैं और भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य तथा वह कर्ण और हमारे पक्ष के भी प्रधान योद्धाओं के सहित सब-के-सब आपके दाढ़ों के कारण विकराल भयानक मुखोंमें बड़े वेगसे दौड़ते हुए प्रवेश कर रहे हैं और कई एक चूर्ण हुए सिरों सहित आपके दाँतों के बीचमें लगे हुए दीख रहे हैं॥२६,२७॥

All those sons of Dhratarașțra with hosts of kings are entering You. Bhișma, Droņa and yonder Karņa, with the principal warriors on our side as well, are rushing headlong into Your fearful mouths looking all the more terrible on account of their teeth; some are seen stuck up in the gaps between Your teeth with their heads crushed. (26,27)

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः
समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति ।
तथा तवामी नरलोकवीरा
विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति ॥ २८॥

जैसे नदियों के बहुत-से जल के प्रवाह स्वाभाविक ही समुद्र के ही सम्मुख दौड़ते हैं अर्थात् समुद्र में प्रवेश करते हैं, वैसे ही वे नरलोक के वीर भी आपके प्रज्वलित मुखों में प्रवेश कर रहे हैं। ॥२८॥

As the myriad streams of rivers rush towards the sea alone, so do those warriors of the mortal world enter your flaming mouths. (28)

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा
विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।
तथैव नाशाय विशन्ति लोका-
स्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥ २९॥

जैसे पतंगे मोहवश नष्ट होनेके लेये प्रज्वलित अग्नि में अतिवेग से दौड़ते हुए प्रवेश करते हैं, वैसे ही ये सब लोग भी अपने नाशके लिये आपके मुखों में अतिवेग से दौड़ते हुए प्रवेश कर रहे हैं। ॥२९॥

As moths rush with great speed into the blazing fire for extinction out of their folly, even so all these people are with great rapidity entering Your mouths to meet their doom (29)

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ता -
ल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं
भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ॥ ३०॥

आप उन सम्पूर्ण लोकों को प्रज्वलित मुखों द्वारा ग्रास करते हुए सब ओर से बार-बार चाट रहे हैं। हे विष्णो! आपका उग्र प्रकाश सम्पूर्ण जगत को तेजके द्वारा परिपूर्ण करके तपा रहा है। ॥३०॥

Swallowing through your blazing mouths, You are licking all those people on all sides. Lord, Your terrible splendours are burning the entire universe, filling it with radiance. (30)

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो
नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं
न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥ ३१॥

मुझे बतलाइये कि आप उग्ररूप वाले कौन हैं? हे देवोंमे श्रेष्ठ! आपको नमस्कार हो, आप प्रसन्न होइये। आदि पुरुष आपको मैं विशेषरूप से जानना चाहता हूँ, क्योंकि मैं आपकी प्रवृत्ति को नहीं जानता। ॥३१॥

Tell me who You are with a form so terrible? My obeisance to You, O best of gods; be kind to me, I wish to know You, the Primal Being, in particular; for I know not Your purpose. (31)

श्रीभगवानुवाच।
कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो
लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥ ३२॥

श्रीभगवान् बोले—मैं लोकों का नाश करने वाला बढ़ा हुआ महाकाल हूँ इस समय इन लोकों को नष्ट करनेके लिये प्रवृत्त हुआ हूँ। इसलिये जो प्रतिपक्षियों की सेना में स्थित योद्धा लोग हैं वे सब तेरे बिना भी नहीं रहेंगे अर्थात् तेरे युद्ध न करने पर भी इन सबका नाश हो जायगा। ॥३२॥

Śri Bhagavan said: I am inflamed Kalā (the eternal Time spirit), the destroyer of the worlds. I am out to exterminate these people. Even without you all those warriors arrayed in the enemy's camp must die. (32)

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रून्भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम् ।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥ ३३॥

अतएव तू उठ ! यश प्राप्त कर और शत्रुओं को जीतकर धन-धान्य से सम्पन्न राज्य को भोग। ये सब शूरवीर पहले ही से मेरे ही द्वारा मारे हुए हैं! हे सव्यसाचिन्! तू तो केवल निमित्तमात्र बन जा। ॥३३॥

Therefore, do you arise and win glory; conquering foes, enjoy the affluent kingdom. These warriors stand already slain by Me; be you only an instrument, Arjuna. (33)

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च
कर्णं तथान्यानपि योधवीरान् ।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा
युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ॥ ३४॥

द्रोणाचार्य और भीष्मपितामह तथा जयद्रथ और कर्ण तथा और भी बहुत-से मेरे द्वारा मारे हुए शूरवीर योद्धाओं को तू मार। भय मत कर, निःसंदेह तू युद्ध में वैरियों को जीतेगा, इसलिये युद्ध कर ! ॥३४॥

Do you kill Droṇa and Bhiṣma and Jayadraṭha and Karṇa and even other brave warriors; who stand already killed by Me; fear not. You will surely conquer the enemies in this war; therefore, fight. (34)

सञ्जय उवाच ।
एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य
कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी ।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं
सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ॥ ३५॥

सञ्जय बोले—केशव भगवान् के इस वचन को सुनकर मुकुटधारी अर्जुन हाथ जोड़कर काँपता हुआ नमस्कार करके, फिर भी अत्यन्त भयभीत होकर प्रणाम करके भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति गद्गद वाणी से बोला । ॥३५॥

Sanjaya said: Hearing these words of Bhagavān Keśava, Arjuna tremblingly bowed to Him with joined palms, and bowing again in extreme terror spoke to Śri Kṛṣṇa in faltering accents. (35)

अर्जुन उवाच ।
स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः ॥ ३६॥

अर्जुन बोले—हे अन्तर्यामिन् ! यह योग्य ही है आपके नाम, गुण और प्रभाव के कीर्तन से जगत् अति हर्षित हो रहा है और अनुराग को भी प्राप्त हो रहा है तथा भयभीत राक्षस लोग दिशाओं में भाग रहे हैं और सिद्धगणों के समुदाय नमस्कार कर रहे हैं । ॥३६॥

Arjuna said: Lord, well it is the universe exults and is filled with love by chanting Your names, virtues and glory; terrified Raksasas are fleeing in all directions, and all the hosts of Siddhas are bowing to You. (36)

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ।
अनन्त देवेश जगन्निवास
त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥ ३७॥

हे महात्मन्! ब्रह्मा के भी आदिकर्ता और सबसे बड़े आपके लिये वे कैसे नमस्कार न करें, क्योंकि हे अनन्त ! हे देवेश ! हे जगन्निवास ! जो सत्, असत् और उनसे परे अक्षर अर्थात् सच्चिदानन्दघन ब्रह्म हैं, वह आप ही हैं । ॥३७॥

O great soul, why should they not bow to you, who are the progenitor of Brahma himself and the greatest of the great? O infinite Lord of celestials, Abode of the universe, You are that which is existent (Sat), that which is non-existent (Asat) and also that which is beyond both, viz, the indestructible Brahma. (37)

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥ ३८॥

आप आदिदेव सनातन पुरुष हैं, आप इस जगतके परम आश्रय और जानने वाले तथा जानने योग्य और परम धाम है। हे अनन्तरूप ! आपसे यह सब जगत् व्याप्त अर्थात परिपूर्ण है । ॥३८॥

You are the primal Deity, the most ancient Person, You are the ultimate resort of this universe. You are both the knower and the knowable, and the highest abode. It is you who pervade the universe, assuming endless forms. (38)

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥ ३९॥

आप वायु, यमराज, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, प्रजा के स्वामी ब्रह्मा और ब्रह्मा के भी पिता हैं। आपके लिये हजारों बार नमस्कार! नमस्कार हो!! आपके लिये फिर भी बारं बार नमस्कार!! ॥३९॥

You are Vāyu (the wind-god), Yama(the god of death), Agni (the god of fire), the moon-god, Brahmā(the Lord of Creation) nay, the father of Brahmā himself. Hail, hail to you a thousand times; salutations, repeated salutations to You once again. (39)

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते
नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं
सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥ ४०॥

हे अनन्त सामर्थ्यवाले! आपके लिये आगे से और पीछे से भी नमस्कार है। हे सर्वात्मन्! आपके लिये सब ओर से ही नमस्कार हो। क्योंकि अनन्त पराक्रमशाली आप समस्त संसारको व्याप्त किये हुए हैं, इससे आप ही सर्वरूप हैं । ॥४०॥

O Lord of infinite prowess, my salutations to You from before and from behind. O soul of all, my obeisance to You from all sides indeed. You, who possess limitless might, pervade all; therefore, You are all. (40)

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।
अजानता महिमानं तवेदं
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥ ४१॥
यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि
विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥ ४२॥

आपके इस प्रभाव को न जानते हुए, आप मेरे सखा हैं ऐसा मानकर प्रेम से अथवा प्रमाद से भी मैंने 'हे कृष्ण'! 'हे यादव!' 'हे सखे!' इस प्रकार जो कुछ बिना सोचे-समझे हठात् कहा है और हे अच्युत! आप जो मेरे द्वारा विनोद के लिये विहार, शैय्या, आसन और भोजनादि में अकेले अथवा उन सखाओं के सामने भी अपमानित किये गये हैं—वह सब अपराध अप्रमेयस्वरूप अर्थात् अचिन्त्य प्रभाव वाले आप से मैं क्षमा करवाता हूँ । ॥४१,४२॥

The way in which I have importunately called out, either through intimacy or even through want of thought, ``He Kṛṣṇa! He Yadava! He Comrade"! and so on, suspecting not this greatness of yours, and thinking you only to be a friend, and the way in which You have been slighted by me in jest, O sinless one, while at play, reposing, sitting or at meals either alone or even in the presence of others–for all that I crave forgiveness from You, who are infinite. (41,42)

पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥ ४३॥

आप इस चराचर जगत् के पिता और सबसे बड़े गुरु एवं अति पूजनीय हैं, हे अनुपम प्रभाववाले! तीनों लोकों में आपके समान भी दूसरा कोई नहीं है फिर अधिक तो कैसे हो सकता है । ॥४३॥

You are the Father, nay, the greatest teacher of this moving and unmoving creation, and worthy of adoration. O Lord of incomparable might, in all the three worlds there is none else even equal to You; how, then, any better ? (43)

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥ ४४॥

अतएव हे प्रभो ! मैं शरीर को भलीभाँति चरणों में निवेदित कर, प्रणाम करके स्तुति करने योग्य आप ईश्वर को प्रसन्न होनेके लिये प्रार्थना करता हूँ। हे देव! पिता जैसे पुत्र के, सखा जैसे सखा के और पति जैसे प्रियतमा पत्नी के अपराध सहन करते हैं—वैसे ही आप भी मेरे अपराध को सहन करने योग्य हैं । ॥४४॥

Therefore, Lord prostrating my body at Your feet and bowing low I seek to propitiate You, that ruler of all and worthy of all praise. It behaves You to bear with me even as a father bears with his son, a friend with his friend and a husband with his beloved spouse. (44)

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा
भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।
तदेव मे दर्शय देव रूपं
प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ ४५॥

मैं पहले न देखे हुए आपके इस आश्चर्यमय रूप को देखकर हर्षित हो रहा हूँ और मेरा मन भय से अति व्याकुल भी हो रहा है, इसलिये आप उस अपने चतुर्भुज विष्णुरूप को ही मुझे दिखलाइये। हे देवेश! हे जगन्निवास! प्रसन्न होइये । ॥ ४५॥

Having seen Your wondrous form, which was never seen before, I feel transported with joy; at the same time my mind is tormented by fear. Pray reveal to me that divine form; the form of Viṣṇu with four arms; O Lord of celestials; Abode of the universe, be gracious. (45)

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्त-
मिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव ।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन
सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ॥ ४६॥

मैं वैसे ही आपको मुकुट धारण किये हुए तथा गदा और चक्र हाथ में लिये हुए देखना चाहता हूँ, इसलिये हे विश्वस्वरुप! हे सहस्रबाहो! आप उसी चतुर्भुजरूप से प्रकट होइये । ॥४६॥

I wish to see You adorned in the same way with a diadem on the head, and holding a mace and a discus in two of Your hands. O Lord with a thousand arms, O Universal Being, appear again in the same four-armed Form. (46)

श्रीभगवानुवाच ।
मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं रूपं परं दर्शितमात्मयोगात् ।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥४७॥

श्रीभगवान् बोले—हे अर्जुन ! अनुग्रहपूर्वक मैंने अपनी योगशक्ति के प्रभावसे यह मेरा परम तेजोमय, सब का आदि और सीमारहित विराट् रूप तुझको दिखालाया है, जिसे तेरे अतिरिक्त दूसरे किसी ने पहले नहीं देखा था। ॥४७॥

Śri Bhagavān said: Arjuna! pleased with You I have shown you, through My own power of Yoga, this supreme, effulgent, primal and infinite Cosmic Body, which was never seen before by anyone else than You. (47)

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानै-
र्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः ।
एवंरूपः शक्य अहं नृलोके
द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥४८॥

हे अर्जुन! मनुष्यलोक में इस प्रकार विश्वरूपवाला मैं न वेद और यज्ञोंके अध्ययन से, न दान से, न क्रियाओं से और न उग्र तपों से ही तेरे अतिरिक्त दूसरे के द्वारा देखा जा सकता हूँ। ॥४८॥

Arjuna, in this mortal world I cannot be seen in this Form by anyone else than you, either through study of the Vedas or rituals, or again through gifts, actions or austere penances. (48)

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो
दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम् ।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं
तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ॥ ४९॥

मेरे इस प्रकार के इस विकराल रूपको देखकर तुझको व्याकुलता नहीं होनी चाहिये और मूढभाव भी नहीं होना चाहिये। तू भयरहित और प्रीतियुक्त मनवाला होकर उसी मेरे इस शंख-चक्र-गदा-पद्मयुक्त चतुर्भुज रूप को फिर देख । ॥४९॥

Seeing such a dreadful Form of Mine as this, be not perturbed or perplexed; with a fearless and complacent mind, behold once again the same four-armed Form of Mine (bearing the conch, discus, mace and lotus). (49)

सञ्जय उवाच ।
इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा
स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः।
आश्वासयामास च भीतमेनं
भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ॥ ५०॥

सञ्जय बोले - वासुदेव भगवान् ने अर्जुनके प्रति इस प्रकार कहकर फिर वैसे ही अपने चतुर्भुजरूप को दिखलाया, फिर महात्मा श्रीकृष्ण ने सौम्यमूर्ति होकर इस भयभीत अर्जुन को धीरज दिया । ॥५०॥

Sanjaya said: Having spoken thus to Arjuna, Bhagavān Vāsudeva again showed to him in the same way His own four armed Form; and then, assuming a gentle form, the high souled Śrī Kṛṣṇa consoled the frightened Arjuna. (50)

अर्जुन उवाच ।
दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन ।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः॥ ५१॥

अर्जुन बोले---हे जनार्दन! आपके इस अति शान्त मनुष्यरूप को देखकर अब मैं स्थिर-चित्त हो गया हूँ और अपनी स्वाभाविक स्थिति को प्राप्त हो गया हूँ । ॥५१॥

Arjuna said: Krsna, seeing this gentle human form of Yours I have regained my composure and am myself again. (51)

श्रीभगवानुवाच ।
सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम ।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः ॥ ५२॥

श्रीभगवान् बोले—मेरा जो चतुर्भुज रूप तुमने देखा है, यह सुदुर्दर्श है अर्थात् इसके दर्शन बड़े ही दुर्लभ है। देवता भी सदा इस रूपके दर्शनकी आकांक्षा करते रहते हैं । ॥५२॥

Śri Bhagavān said: This form of Mine (with four arms) which you have just seen is exceedingly difficult to perceive. Even the gods are always eager to behold this form. (52)

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥ ५३॥

जिस प्रकार तुमने मुझको देखा है-इस प्रकार चतुर्भुज रूपवाला मैं न वेदों से, न तप से, न दान से और न यज्ञ से ही देखा जा सकता हूँ। ॥५३॥

Neither by study of the Vedas nor by penance, nor again by charity, nor even by ritual can I be seen in this form (with four arms) as you have seen Me. (53)

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥ ५४॥

परन्तु हे परंतप अर्जुन! अनन्य भक्ति के द्वारा इस प्रकार चतुर्भुज रूपवाला मैं प्रत्यक्ष देखने के लिये, तत्त्व से जानने के लिये तथा प्रवेश करने के लेये अर्थात् एकीभाव से प्राप्त होनेके लिये भी शक्य हूँ। ॥५४॥

Through single-minded devotion, however, I can be seen in this form (with four arms), nay, known in essence and even entered into, O valiant Arjuna. (54)

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥ ५५॥

हे अर्जुन ! जो पुरुष केवल मेरे ही लिये सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मों को करनेवाला है, मेरे परायण है, मेरा भक्त है, आसक्तिरहित है और सम्पूर्ण भूतप्राणियों में वैरभाव से रहित है—वह अनन्य भक्ति युक्त पुरुष मुझ को ही प्राप्त होता है । ॥५५॥

Arjuna he who performs all his duties for My sake, depends on Me, is devoted to Me; has no attachment, and free from malice towards all beings, reaches Me. (55)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शनयोगो
नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

अथ श्रीमद्भगवद्गीता

अथ द्वादशोऽध्यायः

ŚRĪMAD BHAGAVAD GĪTĀ

CHAPTER XII

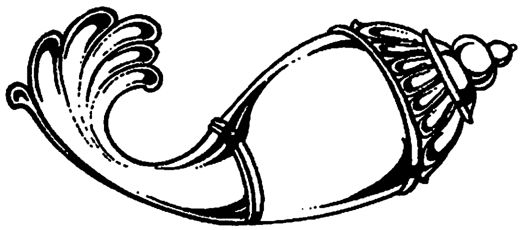

अथ द्वादशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच ।
एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥ १॥

अर्जुन बोले--जो अनन्यप्रेमी भक्तजन पूर्वोक्त प्रकार से निरन्तर आपके भजन-ध्यान में लगे रहकर आप सगुणरूप परमेश्वर को और दूसरे जो केवल अविनाशी सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्म को ही अतिश्रेष्ठ भाव से भजते हैं--उन दोनों प्रकार के उपासकोंमे अति उत्तम योगवेत्ता कौन है? ॥१॥

Arjuna said: The devotees who; with their minds constantly fixed on You as shown above, adore You as possessed of form and attributes, and those who adore as the Supreme Reality only the indestructible unmanifest Brahmā (who is Truth, Knowledge and Bliss solidified)–of these two types of worshippers who are the best knowers of Yoga? (1)

श्रीभगवानुवाच ।
मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥ २॥

श्रीभगवान् बोले--मुझमें मन को एकाग्र करके निरन्तर मेरे भजन-ध्यान में लगे हुए जो भक्तजन अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धा से युक्त होकर मुझ सगुणरूप परमेश्वर को भजते हैं, मुझको योगियों में अति उत्तम योगी मान्य हैं।॥२॥

Śri Bhagavān said: I consider them to be the best Yogis, who endowed with supreme faith, and ever united through meditation with Me, worship Me with the mind centred on Me. (2)

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ।। ३।।
संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ।। ४।।

परन्तु जो पुरुष इन्द्रियों के समुदाय को भली प्रकार वश में करके मन-बुद्धि से परे सर्वव्यापी, अकथनीय-स्वरूप और सदा एकरस रहनेवाले नित्य, अचल, निराकार, अविनाशी सच्चिदानन्दघन ब्रह्म को निरन्तर एकीभाव से ध्यान करते हुए भजते हैं, वे सम्पूर्ण भूतों के हित में रत और सब में समान भाव वाले योगी मुझको ही प्राप्त होते हैं । ।।३.४।।

Those, however, who fully controlling all their senses and evenminded towards all, and devoted to the welfare of all beings, constantly adore as their very self the unthinkable, omnipresent, indestructible, indefinable, eternal, immovable unmanifest and changeless Brahma, they too come to Me. (3,4)

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्त चेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ।। ५।।

उन सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्म में आसक्त चित्तवाले पुरुषों के साधन में परिश्रम विशेष है, क्योंकि देहाभिमानियों के द्वारा अव्यक्तविषयक गति दुःखपूर्वक प्राप्त की जाती है । ।।५।।

Of course, the strain is greater for those who have their mind attached to the Unmanifest, for attainment with the Unmanifest is attained with difficulty by those who are centred in the body. (5)

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥ ६॥
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥ ७॥

परन्तु जो मेरे परायण रहनेवाले भक्तजन सम्पूर्ण कर्मों को मुझमें अर्पण करके मुझ सगुणरुप परमेश्वर को ही अनन्य भक्तियोग से निरन्तर चिन्तन करते हुए भजते हैं। हे अर्जुन! उन मुझमें चित्त लगानेवाले प्रेमी भक्तों का मैं शीघ्र ही मृत्यरूप संसार-समुद्र से उद्धार करने वाला होता हूँ।॥६,७॥

On the other hand, those who depending exclusively on Me, and surrendering all actions to Me, worship Me (God with attributes), constantly meditating on Me with single-minded devotion. Those, Arjuna, I speedily deliver from the ocean of birth and death, their mind being fixed on Me (6,7)

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥ ८॥

मुझमें मनको लगा और मुझमें ही बुद्धि को लगा, इसके उपरान्त तू मुझमें ही निवास करेगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। ॥८॥

Therefore, fix your mind on Me, and establish your intellect in Me alone; thereafter you will abide solely in Me. There is no doubt about it. (8)

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय ॥ ९॥

यदि तू मनको मुझमें अचल स्थापन करने के लिये समर्थ नहीं है तो, हे अर्जुन ! अभ्यासरूप योग के द्वारा मुझको प्राप्त होनेके लिये इच्छा कर । ॥९॥

If you cannot steadily fix the mind on Me, Arjuna, then seek to attain Me through the Yoga of repeated practice. (9)

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ १०॥

यदि तू उपर्युक्त अभ्यास में भी असमर्थ है तो केवल मेरे लिये कर्म करने के ही परायण हो जा। इस प्रकार मेरे निमित्त कर्मों को करता हुआ भी मेरी प्राप्तिरूप सिद्धि को ही प्राप्त होगा । ॥१०॥

If you are unequal even to the pursuit of such practice, be intent to work for Me; you shall attain perfection (in the shape of My realization) even by performing actions for My sake. (10)

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥ ११॥

यदि मेरी प्राप्तिरूप योग के आश्रित होकर उपर्युक्त साधन को करने में भी तू असमर्थ है तो मन-बुद्धि आदि पर विजय प्राप्त करने वाला होकर सब कर्मों के फल का त्याग कर । ॥११॥

If, taking recourse to the Yoga of My realization, you are unable even to do this, then, subduing your mind and intellect etc., relinquish the fruit of all actions. (11)

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥ १२॥

मर्म को न जानकर किये हुए अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है, ज्ञान से मुझ परमेश्वर के स्वरूपका ध्यान श्रेष्ठ है और ध्यान से भी सब कर्मों के फल का त्याग श्रेष्ठ है, क्योंकि त्याग से तत्काल ही परम शान्ति होती है। ॥१२॥

Knowledge is better than practice (without discernment), meditation on God is superior to knowledge, and renunciation of the fruit of actions is even superior to meditation; for peace immediately follows from renunciation. (12)

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ।। १३।।
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ।। १४।।

जो पुरुष सब भूतों में द्वेष-भावसे रहित, स्वार्थरहित, सबका प्रेमी और हेतुरहित दयालु है तथा ममता से रहित, अहंकार से रहित, सब-दुःखों की प्राप्ति में सम और क्षमावान् है अर्थात् अपराध करनेवाले को भी अभय देनेवाला है, तथा जो योगी निरन्तर संतुष्ट है, मन-इन्द्रियोंसहित शरीर को वश में किये हुए है और मुझमें दृढ़ निश्चयवाला है—वह मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिवाला मेरा भक्त मुझको प्रिय है । ।।१३.१४।।

He who is free from malice towards all beings, friendly and compassionate, rid of `I' and `mine', balanced in joy and sorrow, forgiving by nature, ever-contented and mentally united with Me, nay, who has subdued his mind, senses and body, has a firm resolve, and has surrendered his mind and reason to Me,-that devotee of Mine is dear to Me. (13,14)

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः।। १५।।

जिससे कोई भी जीव उद्वेग को प्राप्त नहीं होता और जो स्वयं भी किसी जीवसे उद्वेग को प्राप्त नहीं होता, तथा जो हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेगादि से रहित है - वह भक्त मुझको प्रिय है । ।।१५।।

He who is not a source of annoyance to his fellow-creatures, and who in his turn does not feel vexed with his fellow-creatures, and who is free from delight and envy, perturbation and fear, is dear to Me. (15)

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ।। १६।।

जो पुरुष आकांक्षाओं से रहित, बाहर-भीतर से शुद्ध, चतुर, पक्षपात से रहित और दुःखों से छूटा हुआ है—वह सब आरम्भों का त्यागी मेरा भक्त मुझ को प्रिय है । ।।१६।।

He who wants nothing, who is both internally and externally pure, is clever and impartial and has risen above all distractions, and who renounces the feeling of doership in all undertakings-that devotee of Mine is dear of Me. (16)

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ।। १७।।

जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है, न कामना करता है तथा जो शुभ और अशुभ सम्पूर्ण कर्मों का त्यागी है--वह भक्तियुक्त पुरुष मुझको प्रिय है । ।।१७।।

He who neither rejoices nor hates, nor grieves, nor desires, and who renounces both good and evil actions and is full of devotion, is dear to Me. (17)

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानपमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ।। १८।।
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ।। १९।।

जो शत्रु-मित्र में और मान-अपमान में सम है तथा सरदी, गरमी और सुख-दुःखादि द्वन्द्वों में सम है और आसक्ति से रहित है। जो निन्दा स्तुति को समान समझनेवाला, मननशील और जिस किसी प्रकार से भी शरीर का निर्वाह होनेमें सदा ही सन्तुष्ट है और रहनेके स्थानमें ममता और आसक्तिसे रहित है-वह स्थिरबुद्धि भक्तिमान् पुरुष मुझको प्रिय है। ॥१८.१९॥

He who is alike to friend and foe, as well as to honour and ignominy, who remains balanced in heat and cold, pleasure and pain and other contrary experiences, and is free from attachment. He who takes praise and reproach alike, and is given to contemplation and contented with any means of subsistence whatsoever, entertaining no sense of ownership and attachment in respect of his dwelling-place and full of devotion to Me, that man is dear to Me. (18,19)

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥ २०॥

परन्तु जो श्रद्धायुक्त पुरुष मेरे परायण होकर इस ऊपर कहे हुए धर्ममय अमृत को निष्काम प्रेम-भाव से सेवन करते हैं, वे भक्त मुझको अतिशय प्रिय हैं। ॥२०॥

Those devotees, however, who partake in a disinterested way of this nectar of pious wisdom set forth above, endowed with faith and solely devoted to Me, they are extremely dear to Me. (20)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो नाम
द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

अथ श्रीमद्भगवद्गीता

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

ŚRĪMAD BHAGAVAD GĪTĀ

CHAPTER XIII

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच ।
इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥ १॥

श्रीभगवान् बोले—हे अर्जुन ! यह शरीर 'क्षेत्र' इस नामसे कहा जाता है और इसको जो जानता है, उसको 'क्षेत्रज्ञ' इस नाम से उनके तत्त्व को जानने वाले ज्ञानीजन कहते हैं । ॥१॥

Śri Bhagavān said: This body, Arjuna, is termed as the Field (Kṣetra); and him who knows it, the sages discerning the truth about both refer to as the knower of the Field (Kṣetrajña). (1)

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥ २॥

हे अर्जुन ! तू सब क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीवात्मा भी मुझे ही जान और क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ को अर्थात् विकार सहित प्रकृति का और पुरूष का जो तत्त्व से जानना है, वह ज्ञान है – ऐसा मेरा मत है । ॥२॥

Know Myself to be the Kṣetrajña (individual soul) also in all the Kṣetras, Arjuna. And it is the knowledge of Kṣetra and Kṣetrajña (i.e., of Matter with its evolutes and the Spirit) which I consider a Wisdom. (2)

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत् ।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे श्रृणु ॥ ३॥

वह क्षेत्र जो और जैसा है तथा जिन विकारोंवाला है, और जिस कारण से जो हुआ है; तथा वह क्षेत्रज्ञ भी जो और जिस प्रभाव वाला है – वह सब संक्षेप में मुझसे सुन । ॥३॥

What that Kśetra is and what it is like, and also what are its evolutes, again, whence is what, and also finally who that Kṣetrajnā is and what his glory – hear all this from Me in a nutshell. (3)

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक्।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥ ४॥

यह क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का तत्त्व ऋषियों द्वारा बहुत प्रकार से कहा गया है और विविध वेदमन्त्रों द्वारा भी विभागपूर्वक कहा गया है तथा भलीभाँति निश्चय किये हुए युक्तियुक्त ब्रह्मसूत्र के पदों द्वारा भी कहा गया है॥४॥

The truth about the Kṣetra and the Kṣetrajña has been expounded by the seers in manifold ways; again, it has been separately stated in different Vedic chants and also in the conclusive and reasoned texts of the Brahmasūtras. (4)

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः॥ ५॥

पाँच महाभूत, अहंकार, बुद्धि और मूल प्रकृति भी तथा दस इन्द्रियाँ, एक मन और पाँच इन्द्रियों के विषय अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध— ॥५॥

The five elements, the ego, the intellect, the Unmanifest (Primordial Matter), the ten organs (of perception and action), the mind, and the five objects of sense (sound, touch, colour, taste and smell). (5)

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं सङ्घातश्चेतना धृतिः।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम्॥ ६॥

तथा इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, स्थूल देह का पिण्ड, चेतना और धृति—इस प्रकार विकारों के सहित यह क्षेत्र संक्षेप में कहा गया । ॥६॥

Also desire, aversion, pleasure, pain, the physical body, consciousness, firmness; thus is the kṣetra, with its evolutes, briefly stated. (6)

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥ ७॥

श्रेष्ठता के अभिमान का अभाव, दम्भाचरण का अभाव, किसी भी प्राणी को किसी प्रकार भी न सताना, क्षमाभाव, मन-वाणी आदि की सरलता, श्रद्धा-भक्ति सहित गुरु की सेवा, बाहर-भीतर की शुद्धि, अन्तःकरण की स्थिरता और मन-इन्द्रियों सहित शरीर का निग्रह। ॥७॥

Absence of pride, freedom from hypocrisy, non-violence, forbearance, straightness of body, speech and mind, devout service of the preceptor, internal and external purity, steadfastness of mind and control of body, mind and the senses. (7)

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥ ८॥

इस लोक और परलोक के सम्पूर्ण भोगों में आसक्ति का अभाव और अहंकार का भी अभावः जन्म, मृत्यु, जरा और रोग आदि में दुःख और दोषों का बार-बार विचार करना । ॥८॥

Dispassion towards the objects of enjoyment of this world and the next, and also absence of egotism, pondering again and again on the pain and evils inherent in birth, death, old age and disease; (8)

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ ९॥

पुत्र, स्त्री, घर और धन आदि में आसक्ति का अभाव, ममता का न होना तथा प्रिय और अप्रिय की प्राप्तिमें सदा ही चित्तका सम रहना। ॥९॥

Absence of attachment and the feeling of mineness in respect of son, wife, home etc., and constant equipoise of mind both in favourable and unfavourable circumstances; (9)

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥ १०॥

मुझ परमेश्वर में अनन्य योग के द्वारा अव्यभिचारिणी भक्ति तथा एकान्त और शुद्ध देश में रहने का स्वभाव और विषयासक्त मनुष्यों के समुदाय में प्रेम का न होना । ॥१०॥

Unflinching devotion to Me through exclusive attachment, living in secluded, and holy places, and finding no enjoyment in the company of men; (10)

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥ ११॥

अध्यात्म ज्ञान में नित्य स्थिति और तत्त्वज्ञान के अर्थरूप परमात्मा को ही देखना—यह सब ज्ञान है, और जो इससे विपरीत है, वह अज्ञान है- ऐसा कहा है । ॥११॥

Fixity in self-knowledge and seeing God as the object to true knowledge: all this is declared as knowledge, and what is other than this is called ignorance. (11)

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥ १२॥

जो जानने योग्य है तथा जिसको जानकर मनुष्य परमानन्द को प्राप्त होता है, उसको भलीभाँति कहूँगा। वह अनादि परम ब्रह्म न सत् ही कहा जाता है, न असत् ही । ॥१२॥

I shall speak to you at length about that which ought to be known, and knowing which one attains supreme Bliss. That supreme Brahmā, who is the lord of beginningless entities, is said to be neither Sat (being) nor Asat (non-being) (12)

सर्वत: पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वत: श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ १३॥

वह सब ओर हाथ-पैरवाला, सब ओर नेत्र-सिर और मुख वाला तथा सब ओर कान वाला हैं । क्योंकि वह संसार में सबको व्याप्त करके स्थित हैं । ॥१३॥

It has hands and feet on all sides, eyes, head and mouth in all directions, and ears all round; for it stands pervading all in the universe. (13)

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥ १४॥

वह सम्पूर्ण इन्द्रियों के विषयो को जाननेवाला है परन्तु वास्तव में सब इन्द्रियों से रहित है, तथा आसक्ति रहित होनेपर भी सबका धारण-पोषण करनेवाला और निर्गुण होनेपर भी गुणों को भोगने वाला है । ॥१४॥

Though perceiving all sense-objects. It is really speaking, devoid of all senses, Nay, though unattached, it is the sustainer of all nonetheless; and though attributeless, it is the enjoyer of qualities (the three modes of Prakṛti) (14)

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥ १५॥

वह चराचर सब भूतों के बाहर-भीतर परिपूर्ण है और चर-अचररूप भी वही है, और वह सूक्ष्म होने से अविज्ञेय है तथा अति समीप में और दूर में भी स्थित वहीं है । ॥१५॥

It exists without and within all beings, and constitutes the animate and inanimate creation as well. And by reason of its subtlety, It is incomprehensible; it is close at hand and stands after too. (15)

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च॥ १६॥

वह परमात्मा विभाग रहित एक रूप से आकाश के सदृश परिपूर्ण होनेपर भी चराचर सम्पूर्ण भूतों में विभक्त-सा स्थित प्रतीत होता है। तथा वह जानने योग्य परमात्मा विष्णुरूप से भूतों को धारण-पोषण करनेवाला और रुद्ररूप से संहार करने वाला तथा ब्रह्मारूप से सबको उत्पन्न करनेवाला है । ॥१६॥

Though integral like space in its undivided aspect, it appears divided as it were in all animate and inanimate beings. And that Godhead, which is the only object worth knowing, is the sustainer of being (as Viṣṇu) the destroyer (as Rudra) and the creator of all (as Brahmā). (16)

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ।। १७।।

वह परब्रह्म ज्योतियों का भी ज्योति एवं माया से अत्यन्त परे कहा जाता है। वह परमात्मा बोधस्वरूप, जानने के योग्य एवं तत्त्वज्ञान से प्राप्त करने योग्य है और सबके हृदयमें विशेषरूप से स्थित है । ।।१७।।

That supreme Brahmā is said to be the light of all lights and entirely beyond Māyā. The godhead is knowledge itself, worth knowing, and worth attaining through real wisdom, and is particularly seated in the heart of all. (17)

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः ।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ।। १८।।

इस प्रकार क्षेत्र तथा ज्ञान और जानने योग्य परमात्मा का स्वरूप संक्षेप से कहा गया । मेरा भक्त इसको तत्त्वसे जानकर मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है । ।।१८।।

Thus the truth of the Kṣetra and knowledge, as well as of the object worth knowing, God has been briefly discussed; knowing this in reality, My devotee enters into My being. (18)

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि ।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान् ।। १९।।

प्रकृति और पुरुष - इन दोनों को ही तू अनादि जान और राग-द्वेषादि विकारों को तथा त्रिगुणात्मक सम्पूर्ण पदार्थों को भी प्रकृति से ही उत्पन्न जान । ।।१९।।

Prakṛti and Puruṣa, know both these as beginningless. And know all modifications such as likes and dislikes etc. and all objects constituted of the three Guṇas as born of Prakṛti. (19)

कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥ २० ॥

कार्य और करण को उत्पन्न करने में हेतु प्रकृति कही जाती है और जीवात्मा सुख-दुःखोंके भोक्तापनमें अर्थात् भोगनेमें हेतु कहा जाता है॥२०॥

Prakṛti is said to be responsible for bringing forth the evolutes and the instruments; while the individual soul is declared to be the cause of experience of joys and sorrows. (20)

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान् ।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥ २१ ॥

प्रकृति में स्थित ही पुरुष प्रकृति से उत्पन्न त्रिगुणात्मक पदार्थों को भोगता है और इन गुणोंका संग ही इस जीवात्मा के अच्छी-बुरी योनियों में जन्म लेनेका कारण है । ॥२१॥

Only the Puruṣa seated in Prakṛti senses objects of the nature of the three Guṇas evolved from Prakṛti. And it is contact with these Guṇas that is responsible for the birth of this soul in good and evil wombs. (21)

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ॥ २२ ॥

इस देह में स्थित यह आत्मा वास्तव में परमात्मा ही है। वही साक्षी होने से उपद्रष्टा और यथार्थ सम्मति देनेवाला होने से अनुमन्ता, सबका धारण-पोषण करनेवाला होने से भर्ता, जीवरूपसे भोक्ता, ब्रह्मा आदि का भी स्वामी होने से महेश्वर और शुद्ध सच्चिदानन्दघन होने से परमात्मा - ऐसा कहा गया है। ॥२२॥

The Spirit dwelling in this body, is really the same as the Supreme. He has been spoken of as the Witness, the true Guide, the Sustainer of all, the Experiencer (as the embodied soul), the Overlord and the Absolute as well. (22)

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ॥ २३॥

इस प्रकार पुरुष को और गुणों के सहित प्रकृति को जो मनुष्य तत्त्व से जानता है, वह सब प्रकार से कर्तव्य कर्म करता हुआ भी फिर नहीं जन्मता। ॥२३॥

He who thus knows the Puruṣa (Spirit) and Prakṛti (Nature) together with the Guṇas - even though performing his duties in every way, is never born again. (23)

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥ २४॥

उस परमात्मा को कितने ही मनुष्य तो शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि से ध्यान के द्वारा हृदयमें देखते हैं, अन्य कितने ही ज्ञानयोग के द्वारा और दूसरे कितने ही कर्मयोग के द्वारा देखते हैं अर्थात् प्राप्त करते हैं। ॥२४॥

Some by meditation behold the supreme Spirit in the heart with the help of their refined and sharp intellect; others realize it through the discipline of Knowledge, and others, again, through the discipline of Action. (24)

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते ।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥ २५॥

परन्तु इनसे दूसरे, अर्थात् जो मन्दबुद्धिवाले पुरुष हैं, वे इस प्रकार न जानते हुए दूसरों से अर्थात् तत्त्वके जानने वाले पुरुषों से सुनकर ही तदनुसार उपासना करते हैं और श्रवणपरायण पुरुष भी मृत्युरूप संसार सागर को निःसन्देह तर जाते हैं । ॥२५॥

Other dull-witted persons, however, not knowing thus, worship even as they have heard from others; and even those who are thus devoted to hearing, are able to cross the ocean of mundane existence in the shape of death. (25)

यावत्संजायते किञ्चित्सत्त्वं स्थावरजंगमम् ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥ २६॥

हे अर्जुन ! यावन्मात्र जितने भी स्थावर-जंगम प्राणी उत्पन्न होते हैं, उन सबको तू क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के संयोग से ही उत्पन्न जान । ॥२६॥

Arjuna, whatsoever being, animate or inanimate, is born, know it as emanated from the union of Kṣetra (Matter) and the Kṣtrajña (Spirit) (26)

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥ २७॥

जो पुरुष नष्ट होते हुए सब चराचर भूतोमें परमेश्वर को नाशरहित और समभाव से स्थित देखता है वही यथार्थ देखता है । ॥२७॥

He alone truly sees, who sees the supreme Lord as imperishable and abiding equally in all perishable beings, both animate and inanimate. (27)

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥ २८॥

क्योंकि जो पुरुष सबमें समभाव से स्थित परमेश्वर को समान देखता हुआ अपने द्वारा अपने को नष्ट नहीं करता, इससे वह परम गति को प्राप्त होता है । ॥२८॥

For he who kills not himself by himself by seeing the supreme Lord, equally present in all, as one, thereby reaches the supreme state. (28)

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ।
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति ॥ २९॥

और जो पुरुष सम्पूर्ण कर्मों को सब प्रकार से प्रकृति के द्वारा ही किये जाते हुए देखता है और आत्मा को अकर्ता देखता है, वही यथार्थ देखता है। ॥२९॥

And he alone really sees, who sees all actions being performed in every way be Prakṛti alone, and the Self as the non-doer. (29)

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥ ३०॥

जिस क्षण यह पुरुष भूतों के पृथक-पृथक भाव को एक परमात्मा में ही स्थित तथा उस परमात्मा से ही सम्पूर्ण भूतों का विस्तार देखता है, उसी क्षण वह सच्चिदानन्दघन ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है । ॥३०॥

The moment man perceives the diversified existence of beings as rooted in the one supreme Spirit, and the spreading forth of all beings from the same, that very moment he attains Brahma (who is Truth, Consciousness and Bliss solidified). (30)

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥ ३१॥

हे अर्जुन ! अनादि होनेसे और निर्गुण होनेसे यह अविनाशी परमात्मा शरीरमें स्थित होनेपर भी वास्तवमें न तो कुछ करता है और न लिप्त ही होता है । ॥३१॥

Arjuna, being without beginning and without attributes, this indestructible supreme Spirit, though dwelling in the body, in fact does nothing, nor gets contaminated. (31)

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ॥ ३२॥

जिस प्रकार सर्वत्र व्याप्त आकाश सूक्ष्म होने के कारण लिप्त नही होता, वैसे ही देह में सर्वत्र स्थित आत्मा निर्गुण होने के कारण देह के गुणों से लिप्त नहीं होता । ॥३२॥

As the all-pervading ether is not tainted by reason of its subtlety, so seated everywhere in the body, the Self is not affected by the attributes of the body due to its attributeless character. (32)

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥ ३३॥

हे अर्जुन ! जिस प्रकार एक ही सूर्य इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार एक ही आत्मा सम्पूर्ण क्षेत्र को प्रकाशित करता है। ॥३३॥

Arjuna, as the one sun illumines this entire universe, so the one Atmā (Spirit) illumines the whole Kṣetra (Field) (33)

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा ।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ।। ३४।।

इस प्रकार क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के भेदको तथा कार्य सहित प्रकृति से मुक्त होने को जो पुरुष ज्ञान-नेत्रों-द्वारा तत्त्व से जानते हैं, वे महात्माजन परम ब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते हैं । ।।३४।।

Those who thus perceive with the eye of wisdom the difference between the Kṣetra and Kṣetrajña, and the phenomenon of liberation from Pṛakrti with her evolutes, reach the supreme eternal Spirit. (34)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे क्षेत्र-क्षेत्रज्ञविभागयोगो
नाम त्रयोदशोऽध्याय: ।।१३।।

॥ ॐ श्रीकृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥

अथ श्रीमद्भगवद्गीता

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

ŚRĪMAD BHAGAVAD GĪTĀ

CHAPTER XIV

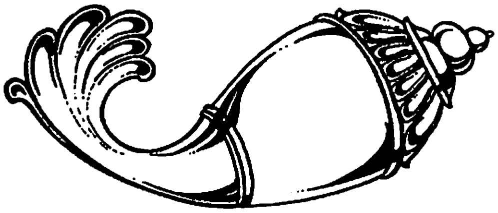

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच ।
परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ॥ १॥

श्रीभगवान् ने कहा – ज्ञानों में भी अति उत्तम उस परम ज्ञान को मैं फिर कहूँगा, जिसको जानकर सब मुनिजन इस संसार से मुक्त होकर परम सिद्धि को प्राप्त हो गये हैं । ॥१॥

Śri Bhagavān said, :``I shall discuss once more the supreme wisdom, the best of all wisdom, acquiring which all sages have attained highest perfection, being liberated from this mundane existence. (1)

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ॥ २॥

इस ज्ञान को आश्रय करके अर्थात् धारण करके मेरे स्वरूप को प्राप्त हुए पुरुष सृष्टि के आदि में पुनः उत्पन्न नहीं होते और प्रलयकाल में भी व्याकुल नहीं होते । ॥२॥

Those who, by practising this wisdom, have entered into My being are not born again at the cosmic dawn nor feel disturbed even during the cosmic night. (2)

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम् ।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥ ३॥

हे अर्जुन ! मेरी महत्-ब्रह्मरूप मूल प्रकृति सम्पूर्ण भूतों की योनि है अर्थात् गर्भाधान का स्थान है और मैं उस योनि में चेतन समुदायरूप गर्भ को स्थापन करता हूँ। उस जड-चेतन के संयोग से सब भूतों की उत्पत्ति होती है । ॥३॥

My primordial Nature, known as the great Brahmā, is the womb of all creatures; in that womb I place the seed of all life. The creation of all beings follows from that union of Matter and Spirit, O Arjuna. (3)

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥ ४॥

हे अर्जुन ! नाना प्रकार की सब योनियों में जितनी मूर्तियाँ अर्थात् शरीरधारी प्राणी उत्पन्न होते हैं, प्रकृति तो उन सबकी गर्भ धारण करनेवाली माता है और मैं बीज को स्थापन करने वाला पिता हूँ । ॥४॥

Of all embodied beings that appear in all the species of various kinds, Arjuna, Prakṛti or Nature is the conceiving Mother, while I am the seed-giving Father. (4)

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः ।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥ ५॥

हे अर्जुन ! सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण- ये प्रकृति से उत्पन्न तीनों गुण अविनाशी जीवात्मा को शरीर में बाँधतै हैं । ॥५॥

Sattva, Rajas and Tamas–these three qualities born of Nature tie down the imperishable soul to the body, Arjuna. (5)

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ।
सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ ॥ ६॥

हे निष्पाप ! उन तीनों गुणों में सत्त्वगुण तो निर्मल होने के कारण प्रकाश करनेवाला और विकाररहित है, वह सुख के सम्बन्ध से और ज्ञान के सम्बन्ध से अर्थात् उसके अभिमान से बाँधता है । ॥६॥

Of these Sattva, being immaculate, is illuminating and flawless, Arjuna; it binds through identification with joy and wisdom. (6)

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम् ।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम् ॥ ७॥

हे अर्जुन ! रागरूप रजोगुण को कामना और आसक्ति से उत्पन्न जान। वह इस जीवात्मा को कर्मों के और उनके फल के सम्बन्ध से बाँधता हैं। ॥७॥

Arjuna, know the quality of Rajas, which is of the nature of passion, as born of cupidity and attachment. It binds the soul through attachment to actions and their fruit. (7)

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ॥ ८॥

हे अर्जुन ! सब देहाभिमानियों को मोहित करनेवाले तमोगुण को तो अज्ञान से उत्पन्न जान। वह इस जीवात्मा को प्रमाद, आलस्य और निद्राके द्वारा बाँधता है । ॥८॥

And know Tamas, the deluder of all those who look upon the body as their own self, as born of ignorance. It binds the soul through error, sloth and sleep, Arjuna (8)

सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत ॥ ९॥

हे अर्जुन ! सत्त्वगुण सुख में लगाता है और रजोगुण कर्म में, तथा तमोगुण तो ज्ञान को ढककर प्रमाद में भी लगाता है। ॥९॥

Sattva drives one to joy and Rajas to action; while Tamas, clouding wisdom, incites one to error as well as sleep and sloth. (9)

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ॥ १०॥

हे अर्जुन ! रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सत्त्वगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण को दबाकर रजोगुण, वैसे ही सत्त्वगुण और रजोगुण को दबाकर तमोगुण होता है अर्थात् बढ़ता है । ॥१०॥

Overpowering Rajas and Tamas, Arjuna, Sattva prevails; overpowering Sattva and Tamas, Rajas Prevails; even so, overpowering Sattva and Rajas, Tamas prevails. (10)

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते ।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ॥ ११॥

जिस समय इस देह में तथा अन्तःकरण और इन्द्रियों में चेतनता और विवेकशक्ति उत्पन्न होती है, उस समय ऐसा जानना चाहिये कि सत्त्वगुण बढ़ा है । ॥११॥

When light and discernment dawn in this body, as well as in the mind and senses, then one should know that Sattva is predominant. (11)

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा ।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ॥ १२॥

हे अर्जुन ! रजोगुण के बढ़ने पर लोभ, प्रवृत्ति, स्वार्थबुद्धि से कर्मों का सकामभाव से आरम्भ, अशान्ति और विषयभोगों की लालसा—ये सब उत्पन्न होते हैं । ॥१२॥

With the preponderance of Rajas, Arjuna, greed, inactivity, undertaking of action with an interested motive, restlessness and a thirst for enjoyment make their appearance (12)

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ॥ १३॥

हे अर्जुन ! तमोगुण के बढ़ने पर अन्तःकरण और इन्द्रियों में अप्रकाश, कर्तव्य-कर्मों में अप्रवृत्ति और प्रमाद अर्थात् व्यर्थ चेष्टा और निद्रादि अन्तःकरण की मोहिनी वृत्तियाँ--ये सब ही उत्पन्न होते हैं। ॥१३॥

With the growth of Tamas, Arjuna, obtuseness of the mind and senses, disinclination to perform one's obligatory duties, frivolity and stupor–all these appear. (13)

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत् ।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते ॥ १४॥

जब यह मनुष्य सत्त्वगुण की वृद्धि में मृत्यु को प्राप्त होता है, तब तो उत्तम कर्म करनेवालों के निर्मल दिव्य स्वर्गादि लोकों को प्राप्त होता है । ॥१४॥

When a man dies during the preponderance of Sattva, he obtains the stainless ethereal world (heaven, etc.) attained by men of noble deeds. (14)

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसंगिषु जायते ।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥ १५॥

रजोगुण के बढ़ने पर मृत्यु को प्राप्त होकर कर्मों की आसक्तिवाले मनुष्यों में उत्पन्न होता है, तथा तमोगुण के बढ़ने पर मरा हुआ मनुष्य कीट, पशु आदि मूढयोनियों में उत्पन्न होता है । ॥१५॥

Dying when Rajas predominates, he is born among those attached to action; even so the man who has expired during the preponderance of Tamas is reborn in the species of stupid creatures, such as insects and beasts etc. (15)

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम् ।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥ १६॥

श्रेष्ठ कर्म का तो सात्विक अर्थात् सुख, ज्ञान और वैराग्यादि निर्मल फल कहा है, राजस कर्म का फल दुःख एवं तामस कर्म का फल अज्ञान कहा है । ॥१६॥

The reward of a righteous act, they say, is Sattvic and faultless (in the shape of joy, wisdom and dispassion etc.); sorrow is declared to be the fruit of a Rajasic act and ignorance, the fruit of a Tamasic act. (16)

सत्त्वात्सञ्जायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥ १७॥

सत्वगुण से ज्ञान उत्पन्न होता है और रजोगुण से निःसन्देह लोभ तथा तमोगुण से प्रमाद और मोह उत्पन्न होते हैं और अज्ञान भी होता है।॥१७॥

Wisdom follows from Sattva, and greed, undoubtedly, from Rajas; likewise obstinate, error, stupor and also ignorance follow from Tamas. (17)

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥ १८॥

सत्वगुण में स्थित पुरुष स्वर्गादि उच्च लोकों को जाते हैं, रजोगुण में स्थित राजस पुरुष मध्य में अर्थात् मनुष्यलोक में ही रहते हैं और तमोगुण के कार्यरूप निद्रा, प्रमाद और आलस्यादि में स्थित तामस पुरुष अधोगति को अर्थात् कीट, पशु आदि नीच योनियों को तथा नरकों को प्राप्त होते हैं। ॥१८॥

Those who abide in the quality of sattva wend their way upwards; while those of a Rajasic disposition stay in the middle. And those of a Tamasic temperament, enveloped as they are in the effects of Tamoguṇa, sink down. (18)

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति ।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥ १९॥

जिस समय द्रष्टा तीनों गुणों के अतिरिक्त अन्य किसी को कर्ता नहीं देखता और तीनों गुणों से अत्यन्त परे सच्चिदानन्दघन स्वरूप मुझ परमात्मा को जानता है, उस समय वह मेरे स्वरूपको प्राप्त होता है।॥१९॥

When the seer perceives no agent other than the three Guṇas, and realizes Me, the supreme Spirit standing entirely beyond these Guṇas, he enters into My Being. (19)

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान् ।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥ २०॥

यह पुरुष शरीर की उत्पत्ति के कारणरूप इन तीनों गुणों को उल्लंघन करके जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था और सब प्रकार के दुःखों से मुक्त हुआ परमानन्द को प्राप्त होता है। ॥२०॥

Having transcended the aforesaid three Guṇas, which have caused the body, and freed from birth, death, old age and all kinds of sorrow, this soul attains supreme bliss. (20)

अर्जुन उवाच ।
कैर्लिङ्गैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो ।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते ॥ २१॥

अर्जुन ने कहा--इन तीनों गुणों से अतीत पुरुष किन-किन लक्षणों से युक्त होता है और किस प्रकार के आचरणोंवाला होता है, तथा हे प्रभो! मनुष्य किस उपाय से इन तीनों गुणोंसे अतीत होता है । ॥२१॥

Arjuna said: What are the marks of him who has risen above the three Guṇas, and what his conduct? And how, Lord ! does he rise above the three Guṇas? (21)

श्रीभगवानुवाच ।
प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव।
न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति ॥ २२॥

श्रीभगवान् ने कहा--हे अर्जुन ! जो पुरुष सत्वगुण के कार्यरूप प्रकाश को और रजोगुण के कार्यरूप प्रवृत्ति को तथा तमोगुण के कार्यरूप मोह को भी न तो प्रवृत्त होनेपर उनसे द्वेष करता है और न निवृत्त होनेपर उनकी आकांक्षा करता है । ॥२२॥

Śri Bhagavān said: Arjuna, he who hates not light (which is born of Sattva) and activity (which is born of Rajas) and even stupor (which is born of Tamas), when prevalent, nor longs for them when they have ceased. (22)

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते ।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते ॥ २३॥

जो साक्षी के सदृश स्थित हुआ गुणों के द्वारा विचलित नहीं किया जा सकता और गुण ही गुणों में बरतते हैं-ऐसा समझता हुआ जो सच्चिदानन्दघन परमात्मा में एकीभाव से स्थित रहता है एवं उस स्थिति से कभी विचलित नहीं होता ॥२३॥

He who, sitting like a witness, is not disturbed by the Guṇas, and who, knowing that the Guṇas alone move among the Guṇas, remains established in identity with God, and never falls off from that state. (23)

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिदात्मसंस्तुतिः ॥ २४॥

जो निरन्तर आत्मभाव में स्थित, दुःख-सुख को समझनेवाला, मिट्टी,पत्थर और स्वर्ण में समान भाववाला, ज्ञानी, प्रिय तथा अप्रिय को एक-सा माननेवाला और अपनी निन्दा-स्तुति में भी समान भाववाला है । ॥२४॥

He who is ever established in the Self, takes woe and joy alike, regards a clod of earth, a stone and a piece of gold as equal in value, is possessed of wisdom, receives the pleasant as well as the unpleasant in the same spirit, and views censure and praise alike. (24)

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥ २५॥

जो मान और अपमान में सम है, मित्र और वैरी के पक्ष में भी सम है एवं सम्पूर्ण आरम्भों में कर्तापन-के अभिमान से रहित है, वह पुरुष गुणातीत कहा जाता है । ॥२५॥

He who is indifferent to honour and ignominy, is alike, to the cause of a friend as well as to that of an enemy, and has renounced the sense of doership in all undertakings, is said to have risen above the three Guṇas. (25)

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते।। २६।।

जो पुरुष अव्यभिचारी भक्तियोग के द्वारा मुझको निरन्तर भजता है, वह भी इन तीनों गुणों को भलीभाँति लाँघकर सच्चिदानन्दघन ब्रह्म को प्राप्त होनेके लिये योग्य बन जाता है । ।।२६।।

He too who, constantly worships Me through the Yoga of exclusive devotion, – transcending these three Guṇas, he becomes eligible for attaining Brahmā. (26)

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च।। २७।।

क्योंकि उस अविनाशी परब्रह्म का और अमृत का तथा नित्य धर्म का और अखण्ड एकरस आनन्द का आश्रय मैं हूँ। ।।२७।।

For, I am the ground of the imperishable Brahmā, of immortality, of the eternal virtue and of unending immutable. (27)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे गुणत्रयविभागयोगो
नाम चतुर्दशोऽध्याय: ।। १४ ।।

अथ श्रीमद्भगवद्गीता

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

ŚRĪMAD BHAGAVAD GĪTĀ

CHAPTER XV

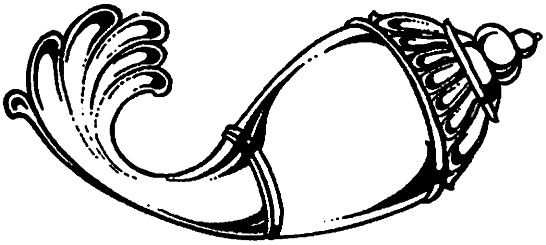

।। ॐ श्रीपरमात्मने नमः ।।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच ।
ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ।। १।।

श्रीभगवान् ने कहा—आदिपुरूष परमेश्वररूप मूलवाले और ब्रह्मारूप मुख्य शाखावाले जिस संसाररूप पीपल के वृक्ष को अविनाशी कहते हैं तथा वेद जिसके पत्ते कहे गये हैं — उस संसार-रूप वृक्ष को जो पुरुष मूलसहित तत्व से जानता है, वह वेद के तात्पर्य को जाननेवाला है। ।।१।।

Śri Bhagavān said: He who knows the peepul tree (in the form of creation); which is said to be imperishable with its roots in the Primeval Being (God), whose stem is represented by Brahmā (the Creator), and whose leaves are the Vedas, is a knower of (the intention of) the Vedas. (1)

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा
गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि
कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ।। २।।

उस संसारवृक्ष की तीनों गुणोरूप जलके द्वारा बढी हुई एवं विषय भोगरूप कोंपलोंवाली देव, मनुष्य और तिर्यक् आदि योनिरूप शाखाएँ नीचे और ऊपर सर्वत्र फैली हुई हैं तथा मनुष्यलोक में कर्मों के अनुसार बाँधनेवाली अहंता, — ममता और वासनारूप जड़ें भी नीचे और ऊपर सभी लोकों में व्याप्त हो रही हैं । ।।२।।

Fed by the three Guṇas and having sense-objects for their tender leaves, the branches of the aforesaid tree (in the shape of the different orders of creation) extend both downwards and upwards; and its roots, which bind the soul according to its actions in the human body, are spread in all regions, higher as well as lower. (2)

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते
नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल-
मसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ॥ ३॥

इस संसारवृक्ष का स्वरूप जैसा कहा है वैसा यहाँ विचारकाल में नहीं पाया जाता। क्योंकि न तो इसका आदि है, न अन्त है तथा न इस की अच्छी प्रकारसे स्थिति ही है। इसलिये इस अहंता, ममता और वासनारूप अति दृढ़ मूलोंवाले संसाररूप पीपलके वृक्ष को दृढ़ वैराग्यरूप शस्त्रद्वारा काटकर — ॥३॥

The nature of this tree creation does not on mature thought turn out what it is represented to be; for it has neither beginning nor end, nor even stability. Therefore, felling this Peepul tree, which is not most firmly rooted, with the formidable axe of dispassion. (3)

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं
यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः ।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥ ४॥

उसके पश्चात् उस परम--पदरूप परमेश्वर को भलीभाँति खोजना चाहिये, जिसमें गये हुए पुरुष फिर लौटकर संसार में नहीं आते और जिस परमेश्वर से इस पुरातन संसार-वृक्ष की प्रवृत्ति विस्तार को प्राप्त हुई हैं, उसी आदिपुरुष नारायण के मैं शरण हूँ--इस प्रकार दृढ निश्चय करके उस परमेश्वर का मनन और निदिध्यासन करना चाहिये । ।।४।।

Thereafter a man should diligently seek for that supreme state, *viz;* God, having attained to which they return no more to this world; and having fully resolved that he stands dedicated to that Primeval Being (god Nārāyana) Himself, from whom the flow of his beginningless creation has progressed, he should dwell and meditate on Him. (4)

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामा: ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ता: सुखदु:खसञ्ज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढा: पदमव्ययं तत् ।। ५।।

जिनका मान और मोह नष्ट हो गया है, जिन्होंने आसक्तिरूप दोष को जीत लिया है, जिनकी परमात्मा के स्वरूपमें नित्य स्थिति है और जिनकी कामनाएँ पूर्णरूप से नष्ट हो गयी हैं-वे सुख-दु:ख नामक द्वन्द्वों से विमुक्त ज्ञानीजन उस अविनाशी परमपद को प्राप्त होते हैं । ।।५।।

Those wise men who are free from pride and delusion, who have conquered the evil of attachment, who are in eternal union with God, whose cravings have altogether ceased and who are completely immune from all pairs of opposites going by the names of pleasure and pain, reach that supreme immortal state. (5)

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावक: ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।। ६।।

जिस परमपद को प्राप्त होकर मनुष्य लौटकर संसार में नहीं आते, उस स्वयंप्रकाश परमपद को न सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न चन्द्रमा और न अग्नि ही, वही मेरा परमधाम है । ॥६॥

Neither the sun nor the moon nor even fire can illumine that supreme self-effulgent state, attaining to which they never return to this world. That is My supreme Abode. (6)

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥ ७॥

इस देह में यह सनातन जीवात्मा मेरा ही अंश है और वही प्रकृति में स्थित मन और पाँचों इन्द्रियों को आकर्षण करता है । ॥७॥

The eternal; Jivātmā in this body is a particle of My own being; and it is that alone which draws round itself the mind and the five senses, which rest in Prakṛti. (7)

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ॥ ८॥

वायु गन्ध के स्थान से गन्ध को जैसे ग्रहण करके ले जाता है, वैसेही देहादि का स्वामी जीवात्मा भी जिस शरीरका त्याग करता है, उससे इन मनसहित इन्द्रियोंको ग्रहण करके फिर जिस शरीर को प्राप्त होता है —उसमें जाता है । ॥८॥

Even as the wind wafts scents from their seat, so too the Jivātmā, which is the controller of the body etc., taking the mind and the senses from the body which it leaves behind forthwith migrates to the body which it acquires. (8)

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ॥ ९॥

यह जीवात्मा श्रोत्र, चक्षु और त्वचा को तथा रसना, घ्राण और मन को आश्रय करके-अर्थात् इस सबके सहारे से ही विषयों का सेवन करता है । ॥९॥

It is while dwelling in the senses of hearing sight, touch, taste and smell, as well as in the mind, that his Jivatmā enjoys the objects of senses. (9)

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम् ।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥ १०॥

शरीर को छोड़कर जाते हुए को अथवा शरीर में स्थित हुए को अथवा विषयों को भोगते हुए को इस प्रकार तीनों गुणों से युक्त हुए को भी अज्ञानीजन नहीं जानते, केवल ज्ञानरूप नेत्रोंवाले विवेकशील ज्ञानी ही तत्वसे जानते हैं । ॥१०॥

The ignorant know not the soul departing from, or dwelling in the body, or enjoying the objects of senses, *i.e.* even when it is connected with the three Guṇas; only those endowed with the eye of wisdom are able to realize it. (10)

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम् ।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ॥ ११॥

यत्न करनेवाले योगीजन भी अपने हृदयमें स्थित इस आत्मा को तत्वसेजानते है, किन्तु जिन्होंने अपने अन्तः करण को शुद्ध नहीं किया है, ऐसे अज्ञानीजन तो यत्न करते रहनेपर भी इस आत्मा को नहीं जानते ॥११॥

Striving Yogis too are able to realise this self enshrined in their heart. The ignorant, however, whose heart has not been purified, know not this self in spite of their best endeavours. (11)

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्॥ १२॥

सूर्य में स्थित जो तेज सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करता है तथा जो तेज चन्द्रमा में है और जो अग्निमें है—उसको मेरा ही तेज जान । ॥१२॥

The light in the sun, that illumines the entire solar world, and that which shines in the moon and that too which shines in the fire, know that light to be Mine. (12)

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः॥१३॥

और मैं ही पृथ्वी में प्रवेश करके अपनी शक्ति से सब भूतों को धारण करता हूँ और रसस्वरूप अर्थात् अमृतमय चन्द्रमा होकर सम्पूर्ण औषधियों को अर्थात् वनस्पतियों को पुष्ट करता हूँ । ॥१३॥

And permeating the soil, it is I who support all creatures by My vital power, and becoming the nectarine moon, I nourish all plants. (13)

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्॥ १४॥

मै ही सब प्राणियों के शरीरमें स्थित रहनेवाला प्राण और अपान से संयुक्त वैश्वानर अग्निरूप होकर चार प्रकार के अन्न को पचाता हूँ। ॥१४॥

Taking the form of fire lodged in the body of all creatures and united with the Prāṇa (ingoing) and Apāna (outgoing) breaths, it is I who consume the four kinds of food. (14)

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ॥ १५॥

मै ही सब प्राणियों के हृदय में अन्तर्यामीरूप से स्थित हूँ तथा मुझसे ही स्मृति, ज्ञान और अपोहन होता है और सब वेदों द्वारा मै ही जानने के योग्य हूँ तथा वेदान्त का कर्ता और वेदों को जाननेवाला भी मैं ही हूँ। ॥१५॥

It is I who remain seated in the heart of all creatures as the inner controller of all; and it is I who am the sources of memory, knowledge and the ratiocinative faculty. Again, I am the only object worth knowing through the Vedas; I alone am the father of Vedānta and the knower of the Vedas too. (15)

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ १६॥

इस संसार में नाशवान् और अविनाशी भी, ये दो प्रकार के पुरुष हैं। इनमें सम्पूर्ण भूतप्राणियों के शरीर तो नाशवान् और जीवात्मा अविनाशी कहा जाता है । ॥१६॥

The perishable and imperishable too–these are the two kinds of Puruṣas in this world. Of these, the bodies of all beings are spoken of as the perishable; while the Jivātmā or the embodied soul is called imperishable. (16)

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥ १७॥

इस दोनों से उत्तम पुरुष तो अन्य ही हैं, जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण-पोषण करता है एवं अविनाशी परमेश्वर और परमात्मा इस प्रकार कहा गया है। ॥१७॥

The Supreme Person is yet other than these, who, having entered all the three worlds, upholds and maintains all, and has been spoken of as the imperishable Lord and the Supreme Spirit. (17)

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥ १८॥

क्योंकि मैं नाशवान् जडवर्ग क्षेत्र से तो सर्वथा अतीत हूँ और अविनाशी जीवात्मा से भी उत्तम हूँ इसलिये लोक में और वेद में भी पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूँ। ॥१८॥

Since I am wholly beyond the perishable world of matter or Kṣetra, and am superior even to the imperishable soul, hence I am known as the Puruṣottama in the world as well as in the Vedas. (18)

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥ १९॥

हे भारत ! जो ज्ञानी पुरुष मुझको इस प्रकार तत्त्व से पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकार से निरन्तर मुझ वासुदेव परमेश्वर को ही भजता है। ॥१९॥

Arjuna, the wise man who thus realizes Me as the Supreme Person, - knowing all, he constantly worships Me (the all-pervading Lord) with his whole being. (19)

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ॥ २० ॥

हे निष्पाप अर्जुन! इस प्रकार यह अति रहस्ययुक्त गोपनीय शास्त्र मेरे द्वारा कहा गया, इसको तत्वसे जानकर मनुष्य ज्ञानवान् और कृतार्थ हो जाता है। ॥२०॥

Arjuna, this most esoteric teaching has thus been imparted by Me; grasping it in essence man becomes wise and his mission in life is accomplished. (20)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषोत्तमयोगो नाम
पञ्चदशोऽध्याय : ॥ १५ ॥

अथ श्रीमद्भगवद्गीता

अथ षोडशोऽध्यायः

ŚRĪMAD BHAGAVAD GĪTĀ

CHAPTER XVI

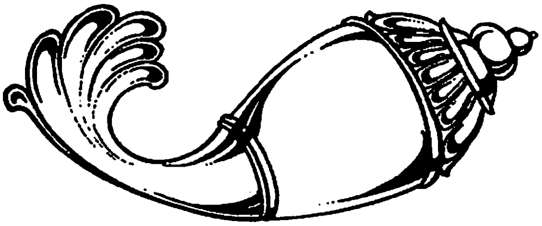

अथ षोडशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच ।
अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ।। १।।

श्रीभगवान् बोले—भय का सर्वथा अभाव, अन्तःकरण की पूर्ण निर्मलता, तत्वज्ञान के लिये ध्यानयोग में निरन्तर दृढ़ स्थिति और सात्विक दान, इन्द्रियों का दमन, भगवान्, देवता और गुरुजनों की पूजा तथा अग्निहोत्र आदि उत्तम कर्मों का आचरण एवं वेद-शास्त्रों का पठन-पाठन तथा भगवान् के नाम और गुणों का कीर्तन, स्वधर्मपालन के लिये कष्टसहन और शरीर तथा इन्द्रियों के सहित अन्तःकरण की सरलता - ।।१।।

Absolute fearlessness, perfect purity of mind, constant fixity in the Yoga of meditation for the sake of Self-realization, and even so charity in its Sattvic form, control of the senses, worship of God and other deities as well as of one's elders including the performance of agnihotra (pouring oblations into the sacred fire) and other sacred duties, study and teaching of the vedas and other sacred books as well as the chanting of God's names and praises, suffering hardships for the discharge of one's sacred obligations and straightness of mind as well as of the body and senses. (1)

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ।। २।।

मन, वाणी और शरीर से किसी प्रकार भी किसी को कष्ट न देना, यथार्थ और प्रिय भाषण, अपना अपकार करनेवाले पर भी क्रोध का न होना, कर्मों में कर्तापन के अभिमान का त्याग, अन्तःकरण की उपरति अर्थात् चित्तकी चञ्चलता का अभाव, किसी की भी निन्दादि न करना, सब भूतप्राणियो में हेतुरहित दया, इन्द्रियों का विषयों के साथ संयोग होनेपर भी उनमें आसक्ति का न होना, कोमलता, लोक और शास्त्रसे विरुद्ध आचरण में लज्जा और व्यर्थ चेष्टाओं का अभाव ; ॥२॥

Non-violence in thought, word and deed, truthfulness and geniality of speech, absence of anger even on provocation, disclaiming doership in respect of actions, quietude or composure of mind, abstaining from malicious gossip, compassion towards all creatures, absence of attachment to the objects of senses even during their contact with the senses, mildness, a sense of shame in transgressing against the scriptures of usage, and abstaining from frivolous pursuits. (2)

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥ ३॥

तेज, क्षमा, धैर्य, बाहर और भीतर की शुद्धि एवं किसी में भी शत्रुभाव का न होना और अपनेमें पूज्यता के अभिमान का अभाव–ये सब तो हे अर्जुन! दैवी-सम्पदा को प्राप्त हुए पुरुष के लक्षण हैं । ॥३॥

Sublimity, forbearance, fortitude, external purity, bearing enmity to none and absence of self-esteem–these are the marks of him, who is born with the divine gifts, Arjuna. (3)

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम् ॥ ४॥

हे पार्थ! दम्भ, घमण्ड और अभिमान तथा क्रोध, कठोरता और अज्ञान ये सब आसुरी सम्पदा को लेकर उत्पन्न हुए पुरुष के लक्षण हैं। ॥४॥

Hypocrisy, arrogance and pride, and anger, sternness and ignorance too–these are the marks of him, who is born with demoniac properties. (4)

दैवी संपद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता ।
मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव॥ ५॥

दैवी-सम्पदा मुक्ति के लिये और आसुरी—सम्पदा बाँधने के लिये मानी गयी है। इसलिये हे अर्जुन! तू शोक मत कर, क्योंकि तू दैवी-सम्पदा को लेकर उत्पन्न हुआ है । ॥५॥

The divine gift has been recognized as conducive to liberation, and the demoniac gift as conducive to bondage. Grieve not, Arjuna; for you are born with the divine endowment. (5)

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च ।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ॥ ६॥

हे अर्जुन! इस लोक में भूतों की सृष्टि यानी मनुष्यसमुदाय दो ही प्रकार का है, एक तो दैवी प्रकृति वाला और दूसरा आसुरी प्रकृतिवाला। उनमें से दैवी प्रकृतिवाला तो विस्तारपूर्वक कहा गया, अब तू आसुरी प्रकृतिवाले मनुष्यसमुदाय को भी विस्तारपूर्वक मुझसे सुन । ॥६॥

There are only two types of men in this world, Arjuna the one possessing a divine nature and the other possessing a demoniac disposition. Of these, the type possessing a divine nature has been dealt with at length; now hear in detail from Me about the type possessing demoniac disposition. (6)

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः ।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥ ७॥

आसुर स्वभाव वाले मनुष्य प्रवृत्ति और निवृत्ति — इन दोनों को भी नहीं जानते। इसलिये उनमें न तो बाहर—भीतर की शुद्धि है, न श्रेष्ठ आचरण है और न सत्यभाषण ही है । ॥७॥

Men possessing a demoniac disposition know not what is right activity and what is right abstinence from activity. Hence they possess neither purity (external or internal) nor good conduct nor even truthfulness. (7)

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ॥ ८॥

वे आसुरी प्रकृति वाले मनुष्य कहा करते हैं कि जगत् आश्रयरहित, सर्वथा असत्य और बिना ईश्वर के, अपने-आप केवल स्त्री-पुरुष के संयोगसे उत्पन्न है, अतएवं केवल काम ही इसका कारण है। इसके सिवा और क्या है? ॥८॥

Men possessing a demoniac disposition say this world is without any foundation, absolutely unreal and godless, brought forth by mutual union of the male and female and hence conceived in lust; what else than this ? (8)

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥ ९॥

इस मिथ्या ज्ञान को अवलम्बन करके—जिनका स्वभाव नष्ट हो गया है तथा जिनकी बुद्धि मन्द है वे सबका अपकार करनेवाले क्रूरकर्मी मनुष्य केवल जगत् के नाश के लिये ही समर्थ होतें हैं । ॥९॥

Clinging to this false view these slow-witted men of a vile disposition and terrible deed these enemies of mankind, prove equal only to the destruction of the universe. (9)

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः ।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ॥ १०॥

वे दम्भ, "मान" और मद से युक्त मनुष्य किसी प्रकार भी पूर्ण न होनेवाली कामनाओं का आश्रय लेकर अज्ञान से मिथ्या सिद्धान्तों को ग्रहण करके और भ्रष्ट आचरणों को धारण करके संसारमें विचरते हैं।॥१०॥

Cherishing insatiable desires and embracing false doctrines through ignorance, these men of impure conduct move in this world, full of hypocrisy, pride and arrogance. (10)

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः ।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥ ११॥

तथा वे मृत्युपर्यन्त रहनेवाली असंख्य चिन्ताओं का आश्रय लेनेवाले विषयभोगों के भोगने में तत्पर रहनेवाले और इतना ही सुख है इस प्रकार मानने वाले होते हैं । ॥११॥

Giving themselves up to innumerable cares ending only with death, they remain devoted to the enjoyment of sensuous pleasures and are positive in their belief that this is the highest limit of joy. (11)

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान् ॥ १२॥

वे आशा की सैकड़ों फाँसियों से बँधे हुए मनुष्य, काम-क्रोध के परायण होकर विषय-भोगों के लिये अन्यायपूर्वक धनादि पदार्थों का संग्रह करने की चेष्टा करते रहते हैं । ॥१२॥

Held in bondage by hundreds of ties of expectations and wholly giving themselves up to lust and anger, they strive to amass by unfair means hoards of money and other objects for the enjoyment of sensuous pleasures. (12)

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥ १३॥

वे सोचा करते हैं कि मैंने आज यह प्राप्त कर लिया है और अब इस मनोरथ को प्राप्त कर लूँगा। मेरे पास यह इतना धन है और फिर भी यह हो जायगा । ॥१३॥

They say to themselves, ``This much has been secured by me today and now I shall realize this ambition. So much wealth is already with me and yet again this shall be mine. (13)

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ॥ १४॥

वह शत्रु मेरेद्वारा मारा गया और उन दूसरे शत्रुओंको भी मैं मार डालूँगा। मैं ईश्वर हूँ, ऐश्वर्य को भोगनेवाला हूँ। मैं सब सिद्धियोंसे युक्त हूँ और बलवान् तथा सुखी हूँ । ॥१४॥

That enemy has been slain by me and I shall kill those others too. I am the lord of all, the enjoyer of all power, I am endowed with all supernatural powers, and am mighty and happy. (14)

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिता: ॥ १५॥
अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृता: ।
प्रसक्ता: कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥ १६॥

मै बड़ा धनी और बड़े कुटुम्ब वाला हूँ। मेरे समान दूसरा कौन है? मैं यज्ञ करुँगा, दान दूँगा और आमोद प्रमोद करुँगा। इस प्रकार अज्ञानसे मोहित रहनेवाले तथा अनेक प्रकारसे भ्रमित चित्तवाले मोहरूप जालसे समावृत और विषयभोगों में आसक्त आसुर लोग महान् अपवित्र नरक में गिरते हैं । ॥१५-१६॥

I am wealthy and own a large family, who else is like unto me? I will sacrifice to gods, will give alms, I will make merry. Thus blinded by ignorance, enveloped in the mesh of delusion and addicted to the enjoyment of sensuous pleasures, their mind bewildered by numerous thoughts, these men of a devilish disposition fall into the foulest hell. (15-16)

आत्मसम्भाविता: स्तब्धा धनमानमदान्विता: ।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ॥ १७॥

वे अपने-आपको ही श्रेष्ठ मानने वाले घमण्डी पुरुष धन और मानके मदसे युक्त होकर केवल नाम-मात्रके यज्ञों द्वारा पाखण्ड से शास्त्रविधिरहित यजन करते हैं । ॥१७॥

Intoxicated by wealth and honour, those self-conceited and haughty men worship God through nominal sacrifices for ostentation without following the sacred rituals. (17)

अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥ १८॥

वे अहंकार बल, घमण्ड, कामना और क्रोधादि के परायण और दूसरों की निन्दा करनेवाले पुरुष अपने और दूसरों के शरीर में स्थित मुझ अन्तर्यामी से द्वेष करनेवाले होते हैं । ॥१८॥

Given over to egotism, brute force, arrogance, lust and anger etc. and calumnizing others, they hate Me (the inner controller of all) dwelling in their own bodies as well as in those of others. (18)

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥ १९॥

उन द्वेष करनेवाले पापाचारी और क्रूरकर्मी नराधमों को मैं संसार में बार-बार आसुरी योनियों में ही डालता हूँ । ॥१९॥

These haters, sinful, cruel and vilest among men, I cast again and again into demoniacal wombs in this world. (19)

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥ २०॥

हे अर्जुन ! वे मूढ मुझको न प्राप्त होकर जन्म-जन्म में आसुरी योनि को प्राप्त होते हैं, फिर उससे भी अति नीच गति को प्राप्त होते हैं अर्थात् घोर नरकों में पड़ते हैं । ॥२०॥

Failing to reach Me, Arjuna, these stupid souls are born life after life in demoniac wombs and then verily sink down to a still lower plane. (20)

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ।। २१।।

काम, क्रोध तथा लोभ--ये तीन प्रकार के नरक के द्वारा आत्मा का नाश करनेवाले अर्थात् उसको अधोगति में ले जानेवाले हैं। अतएव इन तीनों को त्याग देना चाहिये । ।।२१।।

Desire, anger and greed---this triple gate of hell brings about the ruination of the soul. Therefore, one should avoid all these three. (21)

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ।। २२।।

हे अर्जुन ! इन तीनों नरक के द्वारों से मुक्त पुरुष अपने कल्याण का आचरण करता है, इससे वह परमगति को जाता है अर्थात् मुझको प्राप्त हो जाता है । ।।२२।।

Freed from these three gates of hell, man works his own salvation and thereby attains the supreme goal, *i.e.*, God. (22)

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।। २३।।

जो पुरुष शास्त्रविधि को त्यागकर अपनी इच्छा से मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धि को प्राप्त होता है, न परमगति को और न सुख को ही। ।।२३।।

Having cast aside the injunctions of the scripture, he who acts in an arbitrary way according to his own sweet will neither attains perfection nor the supreme goal nor even happiness. (23)

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥ २४॥

इससे तेरे लिये इस कर्तव्य और अकर्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है। ऐसा जानकर तू शास्त्रविधि से नियतकर्म ही करनेयोग्य है। ॥२४॥

Therefore, the scripture alone is your guide in determining what should be done and what should not be done. Knowing this, you ought to perform only such action as is ordained by the scriptures. (24)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुरसम्पद् — विभागयोगो नाम
षोडशोऽध्याय : ॥ १६ ॥

।। ॐ श्रीकृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ।।

अथ श्रीमद्भगवद्गीता

अथ सप्तदशोऽध्यायः

ŚRĪMAD BHAGAVAD GĪTĀ

CHAPTER XVII

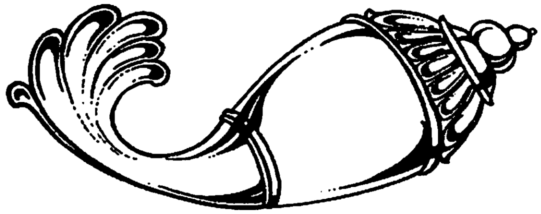

अथ सप्तदशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच ।
ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः॥ १॥

अर्जुन बोले--हे कृष्ण ! जो मनुष्य शास्त्रविधि को त्याग कर श्रद्धा से युक्त हुए देवादिका पूजन करते हैं, उनकी स्थिति फिर कौन-सी है? सात्त्विकी है अथवा राजसी किंवा तामसी? ॥१॥

Arjuna said: Those who, endowed with faith, worship gods and others casting aside the injunctions of the scriptures, where do they stand, Kṛṣṇa - in Sattva, Rajas or Tamas? (1)

श्रीभगवानुवाच ।
त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु ॥ २॥

श्रीभगवान् बोले--मनुष्यों की वह शास्त्रीय संस्कारों से रहित केवल स्वभाव से उत्पन्न श्रद्धा सात्त्विकी और राजसी तथा तामसी--ऐसे तीनों प्रकार की होती है, उसको तू मझसे सुन । ॥२॥

Śri Bhagavān said: That untutored innate faith of men is of three kinds--Sattvic, Rajasic Tamasic. Hear of it from Me. (2)

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥३॥

हे भारत ! सभी मनुष्यों की श्रद्धा उनके अन्तःकरण के अनुरूप होती है। यह पुरुष श्रद्धामय है, इसलिये जो पुरुष जैसी श्रद्धावाला है वह स्वयं वही है । ॥३॥

The faith of all men conforms to their mental constitution, Arjuna. This man consists of faith; whatever the nature of his faith, he is verily that. (3)

यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः ।
प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः ॥ ४॥

सात्त्विक पुरुष देवों को पूजते हैं, राजस पुरुष यक्ष और राक्षसों को तथा अन्य जो तामस मनुष्य हैं, वे प्रेत और भूतगणों को पूजते हैं। ॥४॥

Men of a Sattvic disposition worship gods; those of a Rajasic temperament worship demigods and demons; while others, who are men of a Tamsic disposition, worship the spirits of the dead and groups of ghosts. (4)

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।
दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः॥ ५॥

जो मनुष्य शास्त्रविधि से रहित केवल मनः कल्पित घोर तप को तपते हैं तथा दम्भ और अहंकार से युक्त एवं कामना, आसक्ति और बल के अभिमान से भी युक्त हैं । ॥५॥

Men who practise dire penance of an arbitrary type not sanctioned by the scriptures, and who are full of hypocrisy and egotism and are obsessed with desire, attachment and pride of power. (5)

कर्शयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।
मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान्॥ ६॥

जो शरीर रूप से स्थित भूतसमुदाय को और अन्तःकरण में स्थित मुझ परमात्मा को भी कृश करनेवाले हैं, उन अज्ञानियों को तू आसुरी-स्वभाव वाले जान। ॥६॥

And who emaciate the elements constituting their body as well as Me, the supreme Spirit, dwelling in their heart,--know these senseless people to have a demoniac disposition. (6)

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ॥७॥

भोजन भी सब को अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार तीन प्रकार का प्रिय होता है, और वैसे ही यज्ञ, तप और दान भी तीन-तीन प्रकार के होते है। उनके इस पृथक्-पृथक् भेद को तू मुझसे सुन। ॥७॥

Food also, which is agreeable to different men according to their innate disposition is of three kinds. And likewise sacrifice, penance and charity too are of three kinds each; hear their distinction as follows: (7)

आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥८॥

आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ाने वाले, रसयुक्त चिकने और स्थिर रहने वाले तथा स्वभाव से ही मन को प्रिय--ऐसे आहार अर्थात भोजन करने के पदार्थ सात्विक पुरुष को प्रिय होते हैं । ॥८॥

Foods which promote longevity, intelligence, vigour, health happiness and cheerfulness, and which are sweet, bland substantial and naturally agreeable, are dear to the sattvic type of men. (8)

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥ ९॥

कड़ुवे, खट्टे, लवण युक्त, बहुत गरम, तीखे, रूखे, दाहकारक और दु:ख, चिन्ता तथा रोगों को उत्पन्न करनेवाले आहार अर्थात् भोजन करने के पदार्थ राजस पुरुष को प्रिय होते हैं । ॥९॥

Foods which are bitter, acid, salty, overhot, pungent, dry and burning, and which cause suffering, grief and sickness, are dear to the Rajasic type of men. (9)

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥ १०॥

जो भोजन अधपका, रसरहित, दुर्गन्धियुक्त, बासी और उच्छिष्ट है तथा जो अपवित्र भी है वह भोजन तामस पुरुष को प्रिय होता है । ॥१०॥

Food which is half-cooked or half-ripe, insipid, putrid, stale and polluted, and which is impure too, is dear to men of a Tamasic disposition. (10)

अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते ।
यष्टव्यमेवेति मन: समाधाय स सात्त्विक: ॥ ११॥

जो शास्त्रविधि से नियत, यज्ञ करना ही कर्तव्य है–इस प्रकार मन को समाधान करके, फल को न चाहने वाले पुरुषों द्वारा किया जाता है, वह सात्त्विक है । ॥११॥

The sacrifice which is offered, as ordained by scriptural injunctions, by men who expect no return and who believe that such sacrifices must be performed, is Sattvic in character. (11)

अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत् ।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ॥ १२॥

परन्तु हे अर्जुन केवल ! दम्भाचरण के लिये अथवा फल को भी दृष्टि में रखकर जो यज्ञ किया जाता है, उस यज्ञ को तू राजस जान। ॥१२॥

That sacrifice, however, which is offered for the sake of mere show or even with an eye to its fruit, know it to be Rajasic, Arjuna. (12)

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम्।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥१३॥

शास्त्रविधि से हीन, अन्नदान से रहित, बिना मन्त्रों के, बिना दक्षिणा के और बिना श्रद्धा के किये जानेवाले यज्ञ को तामस यज्ञ कहते हैं। ॥१३॥

A sacrifice which has no respect for scriptural injunctions, in which no food is offered, and no sacrificial fees are paid, which is without sacred chant and devoid of faith, is said to be Tamasic. (13)

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥१४॥

देवता, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानीजनों का पूजन, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा - यह शरीरसम्बन्धी तप कहा जाता है। ॥१४॥

Worship of gods, the brahmans, one's elders and wise men, purity, straightness, continence and harmlessness--this is called bodily penance. (14)

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥१५॥

जो उद्वेग न करने वाला, प्रिय और हित कारक एवं यथार्थ भाषण है तथा जो वेद-शास्त्रों के पठन का एवं परमेश्वर के नाम-जप का अभ्यास है - वही वाणीसम्बन्धी तप कहा जाता है । ॥१५॥

Words which cause no annoyance to others and are truthful, agreeable and wholesome, as well as the study of the Vedas and other Sāstras and the practice of repetition of the Divine Name-this is known as the austerity of speech. (15)

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥ १६॥

मन की प्रसन्नता, शान्तभाव, भगवत्च्चिन्तन करने का स्वभाव, मन का निग्रह और अन्तःकरण के भावों की भलीभाँति पवित्रता--इस प्रकार यह मन सम्बन्धी तप कहा जाता है । ॥१६॥

Cheerfulness of mind, placidity, habit of contemplation on God, control of the mind and perfect purity of inner feelings--all this is called austerity of the mind. (16)

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः ।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते॥ १७॥

फल को न चाहने वाले योगी पुरुषोंद्वारा परमश्रद्धा से किये हुए उस पूर्वोक्त तीन प्रकार के तप को सात्त्विक कहते हैं । ॥१७॥

This threefold penance performed with supreme faith by Yogis expecting no return is called Sattvic. (17)

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत् ।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ॥ १८॥

जो तप सत्कार, मान और पूजा के लेये तथा अन्य किसी स्वार्थ के लिये भी स्वभाव से या पाखण्ड से किया जाता है, वह अनिश्चित एवं क्षणिक फलवाला तप यहाँ राजस कहा गया है । ॥१८॥

The penance which is performed for the sake of renown, honour and worship as well as for any other selfish gain either in all sincerity or by way of ostentation, and yields an uncertain and momentary fruit, has been spoken of here as Rajasic. (18)

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः ।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ॥ १९॥

जो तप मूढतापूर्वक हठ से, मन, वाणी और शरीर की पीड़ा के सहित अथवा दूसरे का अनिष्ट करने के लिये किया जाता है—वह तप तामस कहा गया है । ॥१९॥

Austerity which is practised through perversity and is accompanied with self-mortification or is intended to harm others, such austerity has been declared as Tamasic. (19)

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥ २०॥

दान देना ही कर्तव्य है-ऐसे भाव से जो दान, देश तथा काल और पात्र के प्राप्त होनेपर उपकार न करनेवाले के प्रति दिया जाता है, वह दान सात्त्विक कहा गया है । ॥२०॥

A gift which is bestowed with a sense of duty on one who is no benefactor when a fit place, suitable time and a deserving person are available, that gift has been pronounced as Sattvic. (20)

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥ २१॥

किन्तु जो दान क्लेशपूर्वक तथा प्रत्युपकार के प्रयोजन से अथवा फल को दृष्टिमें रखकर फिर दिया जाता है, वह दान राजस कहा गया है॥२१॥

A gift which is bestowed in a grudging spirit and with the object of getting a service in return or in the hope of obtaining a reward, is called Rajasic. (21)

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ २२॥

जो दान बिना सत्कार के अथवा तिरस्कार पूर्वक अयोग्य देश-काल में और कुपात्र के प्रति दिया जाता है, वह दान तामस कहा गया है। ॥२२॥

A gift which is made without good grace and in a disdainful spirit out of time and place and to undeserving persons, is said to be a Tamasic. (22)

ॐतत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥ २३॥

ॐ, तत्, सत्—ऐसे यह तीन प्रकार का सच्चिदानन्दघन ब्रह्म का नाम कहा है, उसी से सृष्टि के आदिकाल में ब्राह्मण और वेद तथा यज्ञादि रचे गये हैं। ॥२३॥

OM, TAT and SAT --- this has been declared as the threefold appellation of the Absolute, who is Truth, Consciousness and Bliss solidified. By that were the Brahmans and the Vedas as well as sacrifices were created at the cosmic dawn. (23)

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपः क्रियाः ।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥ २४॥

इसलिये वेदमन्त्रों का उच्चारण करने वाले श्रेष्ठ पुरुषों की शास्त्रविधि से नियत यज्ञ, दान और तपरूप क्रियाएँ सदा 'ॐ' इस परमात्मा के नाम को उच्चारण करके ही आरम्भ होती हैं। ॥२४॥

Therefore, acts of sacrifice, charity and austerity as enjoined by sacred precepts are always commenced by noble souls given to the recitation of Vedic chants with utterance of the divine name OM. (24)

तदित्यनभिसन्धाय फलं यज्ञतपःक्रियाः ।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः॥ २५॥

तत् अर्थात् 'तत्' नामसे कहे जानेवाले परमात्मा का ही यह सब है,—इस भाव से फल को न चाहकर नाना प्रकार की यज्ञ, तपरूप क्रियाएँ तथा दानरूप क्रियाएँ कल्याणकी इच्छावाले पुरुषों द्वारा कीजाती हैं।॥२५॥

With the idea that all this belongs to God, who is denoted by the appellation TAT, acts of sacrifice and austerity as well as acts of charity of various kinds are performed by the seekers of blessedness expecting no return for them. (25)

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते॥ २६॥

'सत्' - इस प्रकार यह परमात्मा का नाम सत्यभाव में और श्रेष्ठभाव में प्रयोग किया जाता है, तथा हे पार्थ ! उत्तम कर्म में भी 'सत्' शब्दका प्रयोग किया जाता हैं। ॥२६॥

The name of God, SAT, is employed in the sense of truth and goodness. And the word SAT is also used in the sense of a praiseworthy act, Arjuna. (26)

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ॥ २७॥

तथा यज्ञ, तप और दान में जो स्थिति है, वह भी सत् इस प्रकार कही जाती है और उस परमात्मा के लिये किया हुआ कर्म निश्चयपूर्वक सत्— ऐसे कहा जाता है। ॥२७॥

And steadfastness in sacrifice, austerity and charity is likewise spoken of as `Sat' and action for the sake of God is verily termed as `Sat'. (27)

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥ २८॥

हे अर्जुन ! बिना श्रद्धा के किया हुआ हवन, दिया हुआ दान एवं तपा हुआ तप और जो कुछ भी किया हुआ शुभ कर्म है—वह समस्त 'असत्'- इस प्रकार कहा जाता है, इसलिये वह न तो इस लोक में लाभ दायक है और न मरने के बाद ही। ॥२८॥

An oblation which is offered, a gift given, an austerity practised, and whatever good deed is performed, without faith, it is all termed as naught; therefore, it is of no avail here or hereafter. (28)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम
सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

॥ ॐ श्रीकृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥

अथ श्रीमद्भगवद्गीता

अथ अष्टादशोऽध्यायः

ŚRĪMAD BHAGAVAD GĪTĀ

CHAPTER XVIII

अथ अष्टादशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच ।
संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम्।
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन ॥ १॥

अर्जुन बोले—हे महाबाहो! हे अन्तर्यामिन्! हे वासुदेव! मैं संन्यास और त्याग के तत्त्व को पृथक्—पृथक जानना चाहता हूँ। ॥१॥

Arjuna said: O mightly-armed Śri Kṛṣṇa, O inner controller of all, O Slayer of Keśi, I wish to know severally the truth of Sannyāsa and Tyāga. (1)

श्रीभगवानुवाच ।
काम्यानां कर्मणां न्यासं सन्न्यासं कवयो विदुः ।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥ २॥

श्रीभगवान् बोले—कितने ही पण्डितजन तो काम्यकर्मों के त्याग को संन्यास समझते हैं तथा दूसरे विचारकुशल पुरुष सब कर्मों के फल के त्याग को त्याग कहते हैं। ॥२॥

Śri Bhagavān said: Some sages understand Sannyāsa as the giving up of all actions motivated by desire; and other thinkers declare that Tyāga consists in relinquishing the fruit of all actions. (2)

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ।
यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यमिति चापरे ॥ ३॥

कई एक विद्वान् ऐसा कहते हैं कि कर्ममात्र दोषयुक्त हैं इसलिये त्यागने के योग्य हैं और दूसरे विद्वान् यह कहते हैं कि यज्ञ, दान और तपरूप कर्म त्यागने योग्य नहीं हैं। ॥३॥

Some wise men declare that all action contains a measure of evil, and is therefore worth giving up; while others say that acts of sacrifice, charity and penance are not worth shunning. (3)

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम ।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः सम्प्रकीर्तितः ॥ ४॥

हे पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन ! संन्यास और त्याग, इन दोनों में से पहले त्याग के विषय में तू मेरा निश्चय सुन ! क्योंकि त्याग सात्त्विक, राजस और तामस—भेद से तीन प्रकार का कहा गया है । ॥४॥

Of Sannyāsa and Tyāga, first hear My conclusion on the subject of Tyāga, Arjuna; for Tyāga, O tiger among men, has been declared to be of three kinds -- Sattvic, Rajasic and Tamasic. (4)

यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥ ५॥

यज्ञ, दान और तपरूप कर्म त्याग करने के योग्य नहीं हैं, बल्कि वह तो अवश्य कर्तव्य है, क्योंकि यज्ञ, दान और तप - ये तीनों ही कर्म बुद्धिमान् पुरुषों को पवित्र करनेवाले हैं । ॥५॥

Acts of sacrifice, charity and penance are not worth giving up; they must be performed. For sacrifice, charity and penance -- all these are purifiers of wise men. (5)

एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च ।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ॥ ६॥

इसलिये हे पार्थ ! इन यज्ञ, दान और तपरूप कर्मों को तथा और भी सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मों को आसक्ति और फलों का त्याग करके अवश्य करना चाहिये; यह मेरा निश्चय किया हुआ उत्तम मत है । ॥६॥

Hence these acts of sacrifice, charity and penance, and all other acts too, must be performed without attachment and hope of reward: this is My considered and supreme verdict. Arjuna. (6)

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥ ७॥

(निषिद्ध और काम्य कर्मों का तो स्वरूप से त्याग करना उचित ही है) परन्तु नियत कर्म का स्वरूप से त्याग उचित नहीं है। इसलिये मोह के कारण उसका त्याग कर देना तामस त्याग कहा गया है । ॥७॥

(Prohibited acts and those that are motivated by desire should no doubt be given up). But it is not advisable to abandon a prescribed duty. Its abandonment through ignorance has been declared as Tamasic. (7)

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् ।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ॥ ८॥

जो कुछ कर्म है वह सब दुःख रूप ही है - ऐसा समझकर यदि कोई शारीरिक क्लेश के भय से कर्तव्य कर्मों का त्याग कर दे, तो वह ऐसा राजस त्याग करके त्याग के फल को किसी प्रकार भी नहीं पाता। ॥८॥

Should anyone give up his duties for fear of physical strain, thinking that all action is verily of the nature of discomfort, – practising such Rajasic form of renunciation, he reaps not the fruit of renunciation. (8)

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः॥ ९॥

हे अर्जुन ! जो शास्त्रविहित कर्म करना कर्तव्य है — इसी भाव से आसक्ति और फल का त्याग कर के किया जाता है — वही सात्त्विक त्याग माना गया है । ॥९॥

A prescribed duty which is performed simply because it has to be performed, giving up attachment and fruit, that alone has been recognized as the Sattvic form of renunciation. (9)

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते ।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः ॥१०॥

जो मनुष्य अकुशल कर्म से तो द्वेष नहीं करता और कुशल कर्म में आसक्त नहीं होता — वह शुद्ध सत्त्वगुण से युक्त पुरुष संशयरहित, बुद्धिमान् और सच्चा त्यागी है । ॥१०॥

He who shrinks not from action which does not bring lasting happiness, nor gets attached to that which is conducive to blessedness, -- imbued with the quality of goodness, he has all his doubts resolved, is intelligent and a man of true renunciation. (10)

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ॥११॥

क्योंकि शरीरधारी किसी भी मनुष्य के द्वारा सम्पूर्णता से सब कर्मों का त्याग किया जाना शक्य नहीं है: इसलिये जो कर्मफल का त्यागी है, वही त्यागी है — यह कहा जाता है । ॥११॥

Since all actions cannot be given up in their entirety by anyone possessing a body, he alone who renounces the fruit of actions is called a man of renunciation. (11)

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् ।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित्।। १२।।

कर्मफल का त्याग न करने वाले मनुष्यों के कर्मों का तो अच्छा, बुरा और मिला हुआ — ऐसे तीन प्रकार का फल मरने के पश्चात् अवश्य होता है: किन्तु कर्मफल का त्याग कर देनेवाले मनुष्यों के कर्मों का फल किसी काल में भी नहीं होता। ।।१२।।

Welcome, unwelcome and mixed- threefold, indeed, is the fruit that accrues hereafter from the actions of the unrenouncing. But there is none ever for those who have renounced. (12)

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ।
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ।। १३।।

हे महाबाहो ! सम्पूर्ण कर्मों की सिद्धि के ये पाँच हेतु कर्मों का अन्त करने के लिये उपाय बतलाने वाले सांख्यशास्त्र में कहे गये हैं, उनको तू मुझसे भलीभाँति जान । ।।१३।।

In the branch of learning known by the name of Sānkhya, which prescribes means for neutralizing all actions, these five factors have been mentioned as contributory to the accomplishment of all actions; know them from Me, Arjuna. (13)

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ।। १४।।

इस विषय में अर्थात् कर्मों की सिद्धि में अधिष्ठान और कर्ता तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के करण एवं नाना प्रकार की अलग-अलग चेष्टाएँ और वैसे ही पाँचवाँ हेतु दैव है । ॥१४॥

The following are the factors operating towards the accomplishment of actions, viz., the seat of action and the agent, the organs of different kinds and the separate movements of divergent types; and the fifth is Daiva or destiny. (14)

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः ॥ १५॥

मनुष्य मन, वाणी और शरीर से शास्त्रानुकूल अथवा विपरीत जो कुछ भी कर्म करता है—उसके ये पाँचों कारण हैं । ॥१५॥

These five are the contributory causes of whatever actions, right or wrong, man performs with the mind, speech and body. (15)

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः ।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ॥ १६॥

परन्तु ऐसा होने पर भी जो मनुष्य अशुद्ध बुद्धि होने के कारण उस विषय में यानी कर्मों के होनेमें केवल शुद्धस्वरूप आत्मा को कर्ता समझता है, वह मलिन बुद्धिवाला अज्ञानी यथार्थ नहीं समझता। ॥१६॥

Not withstanding this, however, he who, having an impure mind, regards the absolute, taintless Self alone as the doer, that man of perverse understanding does not view aright. (16)

यस्य नाहङ्कृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ।। १७।।

जिस पुरूष के अन्तःकरण में 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा भाव नहीं है तथा जिसकी बुद्धि सांसारिक पदार्थों में और कर्मों में लिपायमान नहीं होती, वह पुरुष इन सब लोकों को मारकर भी वास्तव में न तो मारता है और न पाप से बँधता है । ।।१७।।

He whose mind is free from the sense of doership, and whose reason is not tainted by worldly objects and activities, does not really slay, even having slaughtered all these creatures nor is bound by sin. (17)

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसङ्ग्रहः ।। १८।।

ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय—यह तीन प्रकार की कर्मप्रेरणा हैं और कर्ता, करण तथा क्रिया — यह तीन प्रकार का कर्म-संग्रह है । ।।१८।।

The Knower, knowledge and the object of knowledge-these three motivate action. Even so the doer, the organs and activity -- these are the three constituents of action. (18)

ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः ।
प्रोच्यते गुणसङ्ख्याने यथावच्छृणु तान्यपि ।। १९।।

गुणों की संख्या करनेवाले शास्त्र में ज्ञान और कर्म तथा कर्ता गुणों के भेद से तीन-तीन प्रकार के कहे गये है: उनको भी तू मुझसे भलीभाँति सुन। ।।१९।।

In the branch of knowledge dealing with the Guṇas or modes of Prakṛti, knowledge and action as well as the doer have been declared to be of three kinds according to the Guṇa which predominates in each; hear them too duly from Me. (19)

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ॥ २०॥

जिस ज्ञानसे मनुष्य-पृथक पृथक सब भूतों में अविनाशी परमात्मभाव को विभागरहित समभाव से स्थित देखता है, उस ज्ञान को तो तू सात्त्विक जान। ॥२०॥

That by which man perceives one imperishable divine existence as undivided and equally present in all individual being, know that knowledge to be Sattvic. (20)

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान् ।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ॥ २१॥

किन्तु जो ज्ञान अर्थात् जिस ज्ञान के द्वारा मनुष्य सम्पूर्ण भूतों में भिन्न-भिन्न प्रकार के नाना भावों को अलग-अलग जानता है, उस ज्ञानको तू राजस जान। ॥२१॥

That, however, by which man re-cognizes many existences of various kinds as apart from one another in all beings, know that knowledge to be Rajasic. (21)

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम् ।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् ॥ २२॥

परन्तु जो ज्ञान एक कार्यरूप शरीर में ही सम्पूर्ण के सदृश आसक्त है तथा जो बिना युक्तिवाला तात्त्विक अर्थ से रहित और तुच्छ है--वह तामस कहा गया है। ॥२२॥

Again, that knowledge which clings to one body as if it were the whole, and which is irrational, has no real object and is trivial has been declared as Tamasic. (22)

नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम् ।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते ॥ २३॥

जो कर्म शास्त्रविधि से नियत किया हुआ और कर्तापन के अभिमान से रहित हो तथा फल न चाहनेवाले पुरुष द्वारा बिना राग-द्वेष के किया गया हो — वह सात्त्विक कहा जाता हैं । ॥२३॥

That action which is ordained by the scriptures and is not accompanied by the sense of doership, and has been done without any partiality or prejudice by one who seeks no return, is called Sattvic. (23)

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहङ्कारेण वा पुनः ।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥ २४॥

परन्तु जो कर्म बहुत परिश्रम से युक्त होता है तथा भोगों को चाहनेवाले पुरुष द्वारा या अहंकार युक्त पुरुष द्वारा किया जाता है, वह कर्म राजस कहा गया है । ॥२४॥

That action however, which involves much strain and is performed by one who seeks enjoyments or by a man full of egotism, has been spoken of as Rajasic. (24)

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम् ।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥ २५॥

जो कर्म परिणाम, हानि, हिंसा और सामर्थ्य को न विचारकर केवल अज्ञान से आरम्भ किया जाता है, वह तामस कहा जाता है । ॥२५॥

That action which is undertaken through sheer ignorance, without counting the upshot, loss to oneself, injury to others and one's own capacity, is declared as Tamasic. (25)

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वित: ।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकार: कर्ता सात्त्विक उच्यते ।। २६।।

जो कर्ता संगरहित, अहंकार के वचन न बोलनेवाला, धैर्य और उत्साह से युक्त तथा कार्य के सिद्ध होने और न होने में हर्ष-शोकादि विकारों से रहित है-वह सात्त्विक कहा जाता है। ।।२६।।

Free from attachment, unegotistic endowed with firmness and vigour and unswayed by success and failure-such a doer is said to be Sattvic. (26)

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचि: ।
हर्षशोकान्वित: कर्ता राजस: परिकीर्तित: ।। २७।।

जो कर्ता आसक्ति से युक्त, कर्मों के फल को चाहनेवाला और लोभी है तथा दूसरों को कष्ट देने के स्वभाव वाला, अशुद्धाचारी और हर्ष-शोक से लिप्त है,– वह राजस कहा गया है। ।।२७।।

The doer who is full of attachment, seeks the fruit of actions and is greedy, and who is oppressive by nature and of impure conduct, and is affected by joy and sorrow, has been called Rajasic. (27)

अयुक्त: प्राकृत: स्तब्ध: शठो नैष्कृतिकोऽलस: ।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ।। २८।।

जो कर्ता अयुक्त, शिक्षा से रहित, घमंडी, धूर्त और दूसरों की जीविका का नाश करनेवाला तथा शोक करनेवाला, आलसी और दीर्घसूत्री है--वह तामस कहा जाता है। ।।२८।।

Lacking piety and self-control, uncultured, arrogant, deceitful, inclined to rob others of their livelihood, slothful, down-hearted and procrastinating, such a doer is called Tamasic. (28)

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु ।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनञ्जय ॥ २९॥

हे धनञ्जय ! अब तू बुद्धि का और धृति का भी गुणों के अनुसार तीन प्रकार का भेद मेरे द्वारा सम्पूर्णता से विभागपूर्वक कहा जानेवाला सुन॥२९॥

Now hear, Arjuna, the threefold division, based on the predominance of each Guṇa, of Buddhi and Dhṛti also, which is being told by Me in full one by one. (29)

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी॥ ३०॥

हे पार्थ! जो बुद्धि प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग को, कर्तव्य और अकर्तव्य को, भय और अभय को तथा बन्धन और मोक्ष को यथार्थ जानती है - वह बुद्धि सात्त्विकी है । ॥३०॥

The intellect which correctly determines the paths of activity and renunciation, what ought to be done and what should not be done, what is fear and what is fearlessness, and what is bondage and what is liberation, that intellect is Sattvic. (30)

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च ।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥ ३१॥

हे पार्थ ! मनुष्य जिस बुद्धि के द्वारा धर्म और अधर्म को तथा कर्तव्य और अकर्तव्य को भी यथार्थ नहीं जानता वह बुद्धि राजसी है । ॥३१॥

The intellect by which man does not truly perceive what is Dharma and what is Adharma, what ought to be done and what should not be done, -- that intellect is Rajasic. (31)

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता ।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥ ३२॥

हे अर्जुन ! जो तमोगुण से घिरी हुई बुद्धि अधर्म को भी 'यह धर्म है' ऐसा मान लेती है, तथा इसी प्रकार अन्य सम्पूर्ण पदार्थों को भी विपरीत मान लेती है, वह बुद्धि तामसी है । ॥३२॥

The intellect which imagines even Adharma to be Dharma, and sees all other things upside-down, -- wrapped in ignorance, that intellect is Tamasic, Arjuna. (32)

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः ।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी॥ ३३॥

हे पार्थ ! जिस अव्यभिचारिणी धारणशक्ति से मनुष्य ध्यानयोग के द्वारा मन, प्राण और इन्द्रियों की क्रियाओं को धारण करता है, वह धृति सात्त्विकी है । ॥३३॥

The unwavering firmness by which man controls through the Yoga of meditation the functions of the mind, the vital airs and the senses--that firmness, Arjuna, is Sattvic. (33)

यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन ।
प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी धृतिः सा पार्थ राजसी॥ ३४॥

परन्तु हे पृथापुत्र अर्जुन ! फल की इच्छावाला मनुष्य जिस धारणशक्ति के द्वारा अत्यन्त आसक्ति से धर्म, अर्थ और कामों को धारण करता है, वह धारणशक्ति राजसी है । ॥३४॥

The Dhṛti, however, by which the man seeking a reward for his actions clutches with extreme fondness a virtue, earthly possessions and worldly enjoyments, - that Dhṛti is Rajasic, Arjuna. (34)

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च ।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी ॥ ३५॥

हे पार्थ ! दुष्ट बुद्धि वाला मनुष्य जिस धारणशक्ति के द्वारा निद्रा, भय, चिन्ता और दु:ख को तथा उन्मत्तता को भी नहीं छोड़ता अर्थात् धारण किये रहता है - वह धारणशक्ति तामसी है । ॥३५॥

The firmness by which an evil-minded person refuses to shake of *i.e.* clings to sleep, fear, anxiety sorrow and vanity as well, that firmness is Tamasic. (35)

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति ॥ ३६॥
यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥ ३७॥

हे भरतश्रेष्ठ! अब तीन प्रकार के सुख को भी तू मुझसे सुन। जिस सुखमें साधक मनुष्य भजन, ध्यान और सेवादि के अभ्यास से रमण करता है, और जिससे दु:खों के अन्त को प्राप्त हो जाता है, जो ऐसा सुख है, वह आरम्भकाल में यद्यपि विष के तुल्य प्रतीत होता है, परन्तु परिणाम में अमृतके तुल्य है: इसलिये वह परमात्म विषयक बुद्धि के प्रसाद से उत्पन्न होनेवाला सुख सात्त्विक कहा गया है । ॥३७॥

Now hear from Me the threefold joy too. That in which the striver finds enjoyment through practice of adoration, meditation and service to God etc., and whereby he reaches the end of sorrrow -- such a joy, though appearing as poison in the beginning, tastes like nectar in the end; hence that joy, born as it is of the placidity of mind brought about by meditation on God, has been declared as Sattvic. (36-37)

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥ ३८॥

जो सुख विषय और इन्द्रियों के संयोगसे होता है, वह पहले भोगकाल में अमृतके तुल्य प्रतीत होने पर भी परिणाम में विष के तुल्य है: इसलिये वह सुख राजस कहा गया है । ॥३८॥

The delight which follows from the contact of the senses with their objects is eventually poison-like, though appearing at first as nectar; hence it has been spoken of as Rajasic. (38)

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः ।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ ३९॥

जो सुख भोगकाल में तथा परिणाम में भी आत्मा को मोहित करनेवाला है - वह निद्रा, आलस्य और प्रमाद से उत्पन्न सुख तामस कहा गया है । ॥३९॥

That which stupefies the self during its enjoyment as well as in the end--derived from sleep, indolence and obstinate error, such delight has been called Tamasic. (39)

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः ॥ ४०॥

पृथ्वी में या आकाश में अथवा देवताओं में तथा इनके सिवा और कहीं भी ऐसा कोई भी सत्त्व नहीं है, जो प्रकृति से उत्पन्न इन तीनों गुणों से रहित हो। ॥४०॥

There is no being on earth or in the middle region or even among the gods or anywhere else, which is free from these three Guṇas born of Prakṛti. (40)

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप ।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥ ४१॥

हे परंतप! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के तथा शूद्रों के कर्म स्वभाव से उत्पन्न गुणों के द्वारा विभक्त किये गये हैं। ॥४१॥

The duties of the Brahmans, the Kṣatriyas and the Vaiśyas, as well as of the Śūdras have been divided according to their inborn qualities, Arjuna. (41)

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥ ४२॥

अन्तःकरण का निग्रह करना; इन्द्रियों का दमन करना; धर्मपालन के लिये कष्ट सहना; बाहर-भीतर से शुद्ध रहना; दूसरों के अपराधों को क्षमा करना; मन इन्द्रिय और शरीर को सरल रखना; वेद, शास्त्र, ईश्वर और परलोक आदि में श्रद्धा रखना; वेद-शास्त्रों का अध्ययन-अध्यापन करना और परमात्मा के तत्त्व का अनुभव करना—ये सब के सब ही ब्राह्मणके स्वाभाविक कर्म हैं। ॥४२॥

Subjugation of the mind and senses, enduring hardships for the discharge of one's sacred obligations, external and internal purity, forgiving the faults of others, straightness of mind, senses and behaviour, belief in the Vedas and other Scriptures, God and life after death etc., study and teaching of Vedas and other scriptures and realization of the truth relating to God–all these constitute the natural duties of a Brahman. (42)

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥ ४३॥

शूरवीरता, तेज, धैर्य, चतुरता और युद्ध में भी न भागना, दान देना और स्वामिभाव - ये सब के सब ही क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म हैं। ॥४३॥

Exhibition of valour, fearlessness, firmness cleverness and steadiness in battle, bestowing gifts, and lordliness--all these constitute and natural duty of a Kṣatriya (43)

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥ ४४॥

खेती, गोपालन और क्रय-विक्रयरूप सत्य व्यवहार-ये वैश्य के स्वाभाविक कर्म हैं। तथा सब वर्णों की सेवा करना शूद्रका भी स्वाभाविक कर्म है। ॥४४॥

Agriculture, rearing of cows and honest exchange of merchandise--these constitute the natural duty of a Vaiśya (a member of the trading class). And service of the other classes is the natural duty even of a Śūdra (a member of the labouring class). (44)

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ॥ ४५॥

अपने-अपने स्वाभाविक कर्मों में तत्परता से लगा हुआ मनुष्य भगवत्प्राप्तिरूप परम सिद्धि को प्राप्त हो जाता है। अपने स्वाभाविक कर्म में लगा हुआ मनुष्य जिस प्रकार से कर्म करके परम सिद्धि को प्राप्त होता है उस विधिको तू सुन । ॥४५॥

Keenly devoted to his own natural duty, man attains the highest perfection in the shape of God-realization. Hear the mode of performance whereby the man engaged in his inborn duty reaches that highest consummation. (45)

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥ ४६॥

जिस परमेश्वर से सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति हुई और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वर की अपने स्वाभाविक कर्मों द्वारा पूजा करके मनुष्य परमसिद्धि को प्राप्त हो जाता है। ॥४६॥

Man attains the highest perfection by worshipping through his own natural duties Him from whom the tide of creation has streamed forth and by whom all this universe is pervaded. (46)

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्॥ ४७॥

अच्छी प्रकार आचरण किये हुए दुसरे के धर्म से गुणरहित भी अपना धर्म श्रेष्ठ है, क्योंकि स्वभाव से नियत किये हुए स्वधर्मरूप कर्म को करता हुआ मनुष्य पाप को नहीं प्राप्त होता । ॥४७॥

Better is one's own duty, though devoid of merit, than the duty of another well-performed; for performing the duty ordained by his own nature man does not incur sin. (47)

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् ।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ॥ ४८॥

अतएव हे कुन्तीपुत्र ! दोषयुक्त होनेपर भी सहज कर्म को नहीं त्यागना चाहिये, क्योंकि धूएँ से अग्नि की भाँति सभी कर्म किसी-न-किसी दोषसे युक्त हैं । ॥४८॥

Therefore, Arjuna, one should not abandon one's innate duty, even though it may be tainted with blemish; for even as fire is enveloped in smoke, all undertakings are clouded with demerit. (48)

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति ॥ ४९॥

सर्वत्र आसक्तिरहित बुद्धिवाला, स्पृहारहित और जीते हुए अन्तःकरणवाला पुरुष सांख्ययोग के द्वारा उस परम नैष्कर्म्यसिद्धि को प्राप्त होता है।॥४९॥

He whose intellect is unattached everywhere, whose thirst for enjoyment has altogether disappeared and who has subdued his mind, reaches through Sānkhyayoga (the path of Knowledge) the consummation of actionlessness. (49)

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे ।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ॥ ५०॥

जो कि ज्ञानयोग की परानिष्ठा है, उस नैष्कर्म्य सिद्धि को जिस प्रकार से प्राप्त होकर मनुष्य ब्रह्म को प्राप्त होता है, उस प्रकार को हे कुन्तीपुत्र! तू संक्षेपमें ही मुझसे समझ । ॥५०॥

Arjuna, know from Me only briefly the process through which man having attained actionlessness, which is the highest consummation of Jnānayoga (the path of Knowledge), reaches Brahma. (50)

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च ।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ॥ ५१॥

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः ।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ॥ ५२॥

अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५३॥

विशुद्ध बुद्धि से युक्त यथा हल्का, सात्त्विक और नियमित भोजन करनेवाला, शब्दादि विषयों का त्याग करके एकान्त और शुद्ध देश का सेवन करनेवाला, सात्त्विक धारणशक्ति के द्वारा अन्तःकरण और इन्द्रियों का संयम करके मन, वाणी और शरीर को वशमें कर लेनेवाला, राग-द्वेष को सर्वथा नष्ट करके भलीभाँति दृढ़ वैराग्य का आश्रय लेनेवाला तथा अहंकार, बल, घमंड, काम, क्रोध और परिग्रह का त्याग करके निरन्तर ध्यानयोग के परायण रहनेवाला, ममतारहित और शान्तियुक्त पुरुष सच्चिदानन्दघन ब्रह्म में अभिन्नभावसे स्थित होने का पात्र होता है। ॥५१,५२,५३॥

Endowed with an untarnished intellect and partaking of a light, Sattvic and regulated diet, living in a lonely and undefiled place having rejected sound and other objects of sense, having controlled the mind, speech and body by restraining the mind and senses through firmness of a Sattvic type, taking resolute stand on dispassion, after having completely got rid of attraction and aversion and remaining ever devoted to the Yoga of meditation having given up egotism, violence, arrogance, lust, anger and luxuries devoid of the feeling of meum and tranquil of heart,—such a man becomes qualified for oneness with Brahma, who is Truth, Consciousness and Bliss. (51,52,and 53)

ब्रह्मभूत: प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
सम: सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥ ५४॥

फिर वह सच्चिदानन्दघन ब्रह्म में एकीभाव से स्थित, प्रसन्न मनवाला योगी न तो किसी के लिये शोक करता है और न किसी की आकांक्षा ही करता है। ऐसा समस्त प्राणियों में समभाव वाला योगी मेरी परा-भक्ति को प्राप्त हो जाता है। ॥५४॥

Established in identity with Brahma (who is Truth, Consciousness and Bliss solidified); and cheerful in mind, the Sānkhyayogi no longer grieves nor craves for anything. The same to all beings, such a Yogi attains supreme devotion to Me. (54)

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वत: ।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥ ५५॥

उस पराभक्ति के द्वारा वह मुझ परमात्मा को, मैं जो हूँ और जितना हूँ, ठीक वैसा का वैसा तत्त्व से जान लेता है; तथा उस भक्ति से मुझ को तत्त्व से जानकर तत्काल ही मुझ में प्रविष्ट हो जाता है। ॥५५॥

Through that supreme devotion he comes to know Me in reality, what and how great I am; and thereby knowing Me in essence he forthwith enters into My being. (55)

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥ ५६॥

मेरे परायण हुआ कर्मयोगी तो सम्पूर्ण कर्मों को सदा करता हुआ भी मेरी कृपा से सनातन अविनाशी परमपद को प्राप्त हो जाता है। ॥५६॥

The Karmayogi, however who depends on Me, attains by My grace the eternal, imperishable state, even though performing all actions. (56)

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ॥ ५७॥

सब कर्मों को मन से मुझ में अर्पण करके तथा समबुद्धिरूप योग को अवलम्बन करके मेरे परायण और निरन्तर मुझमें चित्तवाला हो। ॥५७॥

Mentally resigning all your duties to Me, and taking recourse to yoga in the form of even-mindedness, be solely devoted to Me and constantly give your mind to Me. (57)

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।
अथ चेत्त्वमहङ्कारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि ॥ ५८॥

उपर्युक्त प्रकार से मुझमें चित्तवाला होकर तू मेरी कृपा से समस्त संकटों को अनायास ही पार कर जायगा और यदि अहंकार के कारण मेरे वचनों को न सुनेगा तो नष्ट हो जायगा अर्थात् परमार्थ से भ्रष्ट हो जायगा । ।।५८।।

With your mind thus given to Me, you shall tide over all difficulties by My grace. And if, from egotism, you will not listen, you will be lost. (58)

यदहङ्कारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे ।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति ।। ५९।।

जो तू अहंकार का आश्रय लेकर यह मान रहा है हि 'मैं युद्ध नहीं करूँगा', तेरा यह निश्चय मिथ्या है क्योंकि तेरा स्वभाव तुझे जबर्दस्ती युद्ध में लगा देगा । ।।५९।।

If, taking your stand on egotism, you think, ``I will not fight", vain is this resolve of yours; nature will drive you to the act. (59)

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा ।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत् ।। ६०।।

हे कुन्तीपुत्र! जिस कर्म को तू मोह के कारण करना नहीं चाहता, उसको भी अपने पूर्वकृत स्वाभाविक कर्म से बँधा हुआ परवश होकर करेगा । ।।६०।।

That action too which you are not willing to undertake through ignorance, -- bound by your own duty born of your nature, you will helplessly perform. (60)

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ।। ६१।।

हे अर्जुन ! शरीररूप यन्त्रमें आरूढ हुए सम्पूर्ण प्राणियों को अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी माया से उनके कर्मों के अनुसार भ्रमण कराता हुआ सब प्राणियों के हृदय में स्थित है । ॥६१॥

Arjuna, God abides in the heart of all creatures, causing them to revolve according to their Karma by His illusive power, seated as those beings are in the vehicle of the body. (61)

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥ ६२॥

हे भारत! तू सब प्रकार से उस परमेश्वर की ही शरण में जा। उस परमात्मा की कृपा से ही तू परम शान्ति को तथा सनातन परमधाम को प्राप्त होगा । ॥६२॥

Take shelter in Him alone with all your being, Arjuna. By His mere grace you shall attain supreme peace and the eternal state. (62)

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया ।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ६३॥

इस प्रकार यह गोपनीय से भी अति गोपनीय ज्ञान मैंने तुझसे कह दिया। अब तू इस रहस्ययुक्त ज्ञान को पूर्णतया भलीभाँति विचारकर, जैसे चाहता है वैसे ही कर। ॥६३॥

Thus has this wisdom, more secret than secrecy itself, been imparted to you by Me. Fully pondering it, do as you like.(63)

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥ ६४॥

सम्पूर्ण गोपनीयों से अति गोपनीय मेरे परम रहस्ययुक्त वचन को तू फिर भी सुन, तू मेरा अतिशय प्रिय है, इससे यह परम हितकारक वचन मैं तुझसे कहूँगा । ॥६४॥

Hear, again, My supermely secret word, the most esoteric of all truths, You are extremely dear to Me; therefore, I shall offer you this salutary advice. (64)

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥ ६५॥

हे अर्जुन! तू मुझ में मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो और मुझको प्रणाम कर। ऐसा करने से तू मुझे ही प्राप्त होगा, यह मैं तुझ से सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ, क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है । ॥६५॥

Give your mind to Me, be devoted to Me, worship Me and bow to Me. Doing so you will come to Me alone, I truly promise you; for you are exceptionally dear to Me. (65)

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ ६६॥

सम्पूर्ण धर्मों को अर्थात् सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मों को मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार परमेश्वर की ही शरण में आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर । ॥६६॥

Resigning all your duties to Me, the all-powerful and all supporting Lord, take refuge in Me alone, I shall absolve you of all sins, worry not. (66)

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति॥ ६७॥

तुझे यह गीतारूप रहस्यमय उपदेश किसी भी काल में न तो तपरहित मनुष्य से कहना चाहिये, न भक्तिरहित से और न बिना सुनने की इच्छावाले से ही कहना चाहिये, तथा जो मुझ में दोषदृष्टि रखता है उससे तो कभी भी नहीं कहना चाहिये । ॥६७॥

This secret gospel of the Gitā should never be imparted to a man who lacks penance, nor to him who is wanting in devotion, nor even to him who lends not a willing ear; and in no case to him who finds fault with Me. (67)

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥ ६८॥

जो पुरुष मुझ में परम प्रेम करके इस परम रहस्ययुक्तगीता शास्त्र को मेरे भक्तों में कहेगा, वह मुझको ही प्राप्त होगा-इसमें कोई संदेह नहीं है।॥६८॥

He who, offering the highest love to Me, preaches the most profound gospel of the Gitā among My devotees, shall come to Me alone; there is no doubt in it. (68)

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥ ६९॥

उससे बढ़कर मेरा प्रिय करनेवाला मनुष्यों में कोई भी नहीं हैः तथा पृथ्वीभर में उससे बढ़कर मेरा प्रिय दूसरा कोई भविष्य में होगा भी नहीं । ॥६९॥

Among men there is none who does Me a more loving service than he; nor shall anyone be dearer to Me on the entire globe than he. (69)

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ॥ ७०॥

जो पुरुष इस धर्ममय हम दोनों के संवादरूप गीताशास्त्र को पढ़ेगा, उसके द्वारा भी मैं ज्ञानयज्ञ से पूजित होऊँगा--ऐसा मेरा मत है । ॥७०॥

Whosoever studies this sacred dialogue of ours in the form of the Gitā, by him too shall I be worshipped through wisdom sacrifice such is My mind. (70)

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः ।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ॥ ७१॥

जो मनुष्य श्रद्धायुक्त और दोषदृष्टि से रहित होकर इस गीताशास्त्र का श्रवण भी करेगा, वह भी पापों से मुक्त होकर उत्तम कर्म करनेवालों के श्रेष्ठ लोकों को प्राप्त होगा । ॥७१॥

The man who hears the holy Gitā with reverence and in an uncarping spirit, --- liberated from sin, he too shall reach the happy worlds of the virtuous. (71)

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय ॥ ७२॥

हे पार्थ ! क्या इस (गीताशास्त्र) को तूने एकाग्रचितसे श्रवण किया? और हे धनञ्जय ! क्या तेरा अज्ञानजनित मोह नष्ट हो गया ? ॥७२॥

Have you heard this gospel of the Gitā with one-pointed mind, Arjuna? And has your delusion born of ignorance melted away, O conquerer of riches. (72)

अर्जुन उवाच ।
नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव ॥ ७३॥

अर्जुन बोले-हे अच्युत ! आपकी कृपासे मेरा मोह नष्ट हो गया और मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है, अब मैं संशयरहित होकर स्थित हूँ, अतः आपकी आज्ञा का पालन करूँगा । ॥७३॥

Arjuna said: Kṛṣṇa, by Your grace my delusion has fled and wisdom has been gained by me. I stand shorn of all doubts. I will do your bidding. (73)

सञ्जय उवाच ।
इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ।
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥ ७४॥

सञ्जय बोले—इस प्रकार मैंने श्रीवासुदेव के और महात्मा अर्जुन के इस अद्भुत रहस्ययुक्त, रोमाञ्च कारक संवाद को सुना । ॥७४॥

Sanjaya said: Thus I heard the mysterious and thrilling conversation between Śri Kṛṣṇa and the high souled Arjuna, son of Kunti. (74)

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम् ।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् ॥ ७५॥

श्रीव्यासजी की कृपासे दिव्य दृष्टि पाकर मैंने इस परम गोपनीय योग को अर्जुन के प्रति कहते हुए स्वयं योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण से प्रत्यक्ष सुना है । ॥७५॥

Having been blessed with the divine vision by the grace of Sri Vyāsa, I heard this supremely esoteric gospel from the Lord of Yoga, Śri Kṛṣṇa Himself, imparting it to Arjuna before my very eyes. (75)

राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम् ।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ॥ ७६॥

हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन के इस रहस्ययुक्त, कल्याणकारक और अद्भुत संवाद को पुनःपुनः स्मरण करके मैं बार-बार हर्षित हो रहा हूँ। ॥७६॥

Remembering, over and over, that sacred and mystic conversation between Bhagavān Śri Kṛṣṇa and Arjuna, O King ! I rejoice again and yet again. (76)

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः ।
विस्मयो मे महान्राजन्हृष्यामि च पुनः पुनः॥ ७७॥

हे राजन् ! श्रीहरि के उस अत्यन्त विलक्षण रूप को भी पुनःपुनः स्मरण करके मेरे चित्त में महान् आश्चर्य होता है और मैं बार-बार हर्षित हो रहा हूँ । ॥७७॥

Remembering also, again and again, that most wonderful Form of Śri Kṛṣṇa, great is my wonder and I rejoice over and over again. (77)

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥ ७८॥

हे राजन् ! जहाँ योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण हैं और जहाँ गाण्डीव-धनुषधारी अर्जुन हैं, वहीं पर विजय, विभूति और अचल नीति है-ऐसा मेरा मत है । ॥७८॥

Where ever there is Bhagavān Śri Kṛṣṇa the Lord of Yoga, and wherever there is Arjuna, the wielder of the Gāṇḍiva bow, goodness, victory, glory and unfailing righteousness are there: such is my conviction. (78)

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मोक्षसंन्यासयोगो
नामाष्टादशोऽध्याय : ॥ १८ ॥

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥
॥ जय श्रीकृष्ण ॥

श्रीमद्भगवद्गीता

आरती

जय भगवद्गीते, जय भगवद्गीते ।

हरि-हिय-कमल-विहारिणि, सुन्दर सुपुनीते ।।जय.।।

कर्म-सुमर्म-प्रकाशिनि, कामासक्तिहरा ।

तत्त्वज्ञान-विकासिनि, विद्या ब्रह्म परा ।।जय.।।

निश्चल-भक्ति-विधायिनि निर्मल मलहारी ।

शरण-रहस्य-प्रदायिनि, सब विधि सुखकारी ।।जय.।।

राग-द्वेष-विदारिणि, कारिणि मोद सदा ।

भव-भय-हारिणि, तारिणि परमानन्दप्रदा ।।जय.।।

आसुर-भाव-विनाशिनि, नाशिनि तम-रजनी ।

दैवी सद्गुणदायिनि, हरि-रसिका सजनी ।।जय.।।

समता, त्याग सिखावनि, हरि-मुखकी बानी ।

सकल शास्त्रकी स्वामिनि, श्रुतियोंकी रानी ।।जय.।।

दया-सुधा बरसावनि मातु! कृपा कीजै ।

हरिपद-प्रेम दान कर अपनो कर लीजै ।।जय.।।

ॐ

शान्तिः शान्तिः शान्तिः

REFERENCE BOOKS

Bhagavad Gita (with commentary of Sankaracharya)	-	Translated by Swami Gambhirananda
Srimad Bhagavad Gita (with Hindi & English translation)	-	Jayadayal Goyanka
Srimad Bhagavad Gita - The Text, word to word translation	-	Swami Vireswarananda
The Bhagavad Gita (State University Press of New York)	-	Translated by Winthrop Sergeant
Bhagavad Gita	-	Easwaran Eknath
The Bhagavad Gita	-	Dr. S. Radhakrishnan
Srimad Bhagavad Gita Rahasya	-	Franklin Edgerton
Bhagavad Gita	-	Nikhilanand Swami
Srimad Bhagavad Gita Rahasya	-	Shivananda Swami
Bhagavad Gita The song of GOD	-	Prabhavananda Swami & Isherwood Christopher
Bhagavad Gita the song Celestial	-	Amold Sir Kumar
The Bhagavad Gita	-	Roy Dilip Kumar
The Essays on Gita	-	Sri Aurobindo
Bhagavad Gita and its Teaching	-	Narain Radhika
Srimad Bhagavad Gita The Scripture of Mankind	-	Swami Tapasyananda
All about Gita	-	Swami Harshananda
(Bhagavad Gita) Ramanujas commentary on the Bhagavad Gita	-	Dr. J.A.B. Van Bultenen
Sri Ramanuja's Gita Bhasya	-	Swami Adidevananda
Bhagavad Gita As it is	-	His Divine Grace AC Bhaktivedanta Swami Prabhupada
The Srimad Bhagavad Gita	-	Dr. Shakuntala Rao Sastri
Bhagavad Gita The Divine Message	-	Swami Abhedananda
The Bhagavad Gita	-	Swami Chidbhavananda
The Janeshwari	-	Mr. Yardi
Srimad Bhagavad Gita	-	Swami Swarupananda
Srimad Bhagavad Gita (Sadhak Sanjeevany)	-	Swami Ram Sukha Dass

सम्पूर्ण श्रीमद्

भगवद्गीता

700 श्लोक एक पृष्ठ पर (आधुनिक कम्प्यूटर तकनीक)

Thakur Gowri Shanker Singh

Jt. Secretary

Gita Gyan Mandal

Regn. No.600 **Gitā Gyan Mandal** Estd. : 1971

Flat No.304 (D) II Floor, Siddartha Apartments,
Opp. MRO Office, Lower Tankbund Road, Hyderabad - 500 080

Seven editions published during 1992-2013 for Free Distribution

Tibarumal Jewels

A Ram Bharos & Pankaj Gupta Group

13 to 16, Ground Floor, Lumbini Jewel Mall, Road No.2, Banjara Hills,
Hyderabad - 500 034. Tel. : +91 - 40 - 2360 9099, 2360 2299, 2360 0304
Cell : 098490 00927 E-mail : shobha@tibarumal.in